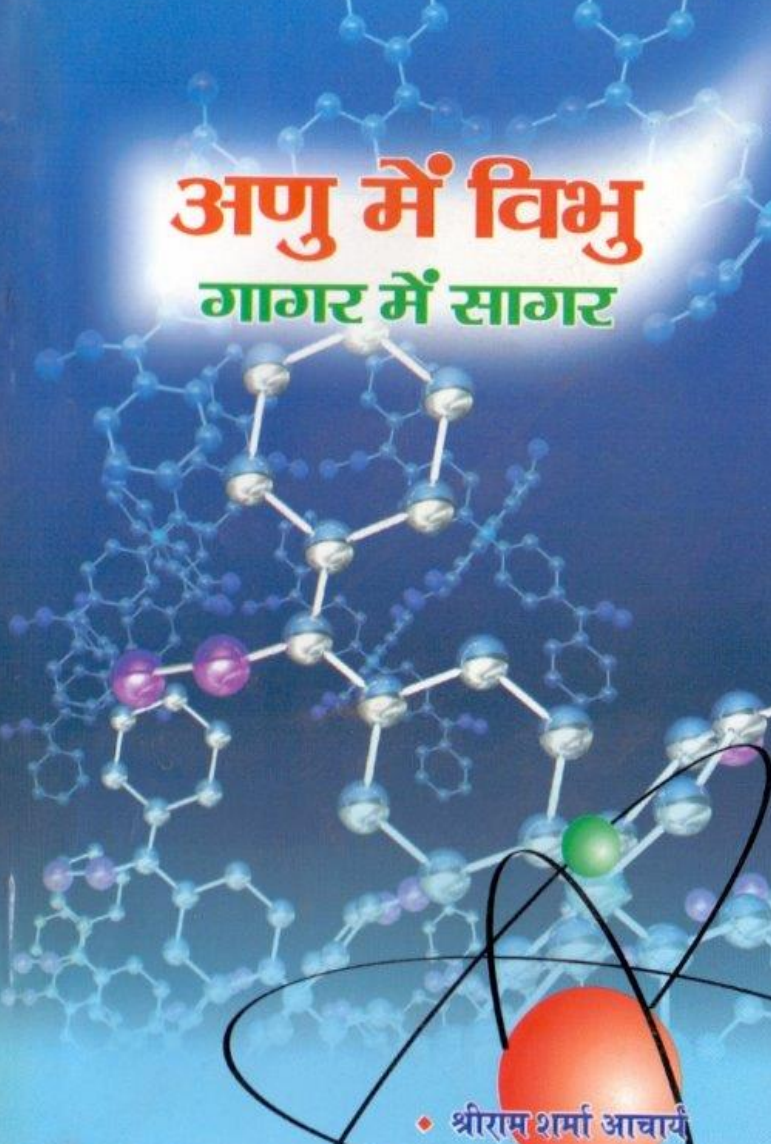
अणु में विभु
गागर में सागर
श्रीराम शर्मा आचार्य

अणु में विभु—गागर में सागर

लेखक
वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

२००९ मूल्य : २१.०० रुपये

विषय सूची

१.	नदी-नद, सागर-तालाब सब कुछ इस शरीर में	३
२.	प्रत्यक्ष से भी अति समर्थ अप्रत्यक्ष	२०
३.	स्वरूप जितना महान् आधार उतना ही सूक्ष्म	३५
४.	अति विलक्षण चेतना अर्थात् सूक्ष्म की सत्ता	४८
५.	शक्ति अर्थात् आत्म चेतना का विज्ञान	६७
६.	असीम-अतुल शक्ति सागर की एक बूँद	७६
७.	शरीर संस्थान में भी सूक्ष्म ही प्रखर	६५

जो सशक्त है—वह सूक्ष्म है, स्थूल तो उसका आवरण मात्र है। काया को हम देख पाते हैं और मनुष्य को उसके कलेवर के रूप में ही पहचानते हैं, पर असली चेतना तो प्राण है, जो न तो दिखाई पड़ता है और न उसका स्तर सहज ही समझ में आता है। जो सूक्ष्म है—वही शक्ति का स्रोत है, उसे समझने और उपभोग करने के लिए गंभीर लक्ष्य वेधक दृष्टि चाहिए।

छोटे से बीज में वृक्ष का विशालकाय कलेवर छिपा रहता है, एक शुक्राणु में मनुष्य का सारा ढाँचा पूरी तरह सन्निहित है, अणु की नगण्य सी सत्ता में एक पूरे सौर मंडल की प्रक्रिया पूरी तरह विद्यमान है, यह सब जानते हुए भी हम 'सूक्ष्मता की शक्ति' से एक प्रकार अपरिचित ही बने हुए हैं।

नदी-नद, सागर-तालाब सब कुछ इस शरीर में

अमेरिका के जीव-वैज्ञानिक डॉ० इर्वन केमरान ने कुछ चूहे लेकर उन्हें एक विशेष बॉक्स में संकेत पाने पर भोजन के लिए प्रशिक्षित किया। चूहे कुछ ही दिन के अभ्यास से प्रशिक्षित हो गये। जब भी उन्हें टॉर्च का प्रकाश दिखाया जाता, वे तुरंत भागते हुए आते और बॉक्स में रखे भोजन को प्राप्त कर लेते। इसके बाद इन प्रशिक्षित चूहों को मारकर उनके मस्तिष्क का न्यूक्लिक एसिड निकाल लिया गया और फिर उसका इंजेक्शन बनाकर कुछ ऐसे चूहों को दिया गया, जिन्हें इस तरह का कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। उस समय डॉ० केमरान के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब यह चूहे भी टॉर्च का प्रकाश देखते ही भोजन के लिये उस विशेष बॉक्स में बिना बताये ही प्रवेश कर गये। यही प्रयोग चूहों के अतिरिक्त दूसरे जंतुओं जैसे छछूँदर, गिलहरी आदि पर भी किया गया और वहाँ भी वही आश्चर्यजनक सत्य देखने को मिला। इससे यह तो निश्चित ही साबित हो गया कि ऐसी कोई चेतन शक्ति प्रकाश के अणुओं में ही है।

डॉ० केमरान ने यह प्रयोग कुछ मनुष्यों पर भी 'मैग्नीशियम पैमुलिन' नामक दवा देकर किया। एक व्यक्ति जो ताश के पत्ते नहीं पहचान पाता था, इस तरह की औषधि का सेवन करने के बाद फिर पत्ते पहचानने लगा। एक मैकेनिक वृद्धावस्था के कारण मशीनों के पुर्जे भूल जाने लगा—इस तरह की औषधि से उसकी ज्ञान क्षमता में विकास हुआ।

यह न्यूक्लिक एसिड क्या है ? यह समझ लें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। हमें पता है कि जिस प्रकार कोई भी पदार्थ का टुकड़ा छोटे-छोटे परमाणुओं से बना है, उसी तरह मनुष्य का शरीर जिन

छोटे-छोटे परमाणुओं से बना है, उन्हें 'कोश' (सेल) कहते हैं। एक कोश में जीवन के सारे लक्षण अमीबा की तरह विद्यमान रहते हैं। अमीबा एक कोशीय जीव है, उसमें आहार, निद्रा, भय आदि वह सब गुण पाये जाते हैं, जिनसे किसी पिंड में चेतना के अस्तित्व की जानकारी होती है। इसी तरह 'कोश' में मनुष्य जीवन के सारे लक्षण विद्यमान रहते हैं।

यह कोश मुख्यतया दो भागों में विभक्त है—(१) नाभिक या केंद्रक (न्यूक्लियस), (२) साइटोप्लाज्म। नाभिक एक तरह का तारा जैसा प्रकाश कण होता है और जीवन की यही अंतिम इकाई है, दूसरे साइटोप्लाज्म में भी सभी प्रोटीन तत्त्व हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, फास्फोरस आदि तत्त्व पाये जाते हैं, यह तभी तक क्रियाशील रहते हैं जब तक नाभिक (न्यूक्लियस) बना रहता है। न्यूक्लियस के निकलते ही यह पदार्थ वाला अंश मृत हो जाता है, निष्क्रिय हो जाता है, यद्यपि इस केंद्रक (न्यूक्लियस) को वैज्ञानिक स्वतंत्र स्थिति में प्रकट नहीं कर सके तथापि ऊपर जिस 'न्यूक्लिक एसिड' की चर्चा की गई है, वह इसी में पाया जाता है, इससे स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि ज्ञान, विचार या अंतर्चेतना प्रकाश कणों का गुण है और यदि वह मनुष्य के स्थूल से भिन्न पदार्थ है तो शरीर से विलग होने के बाद भी उसमें यह गुण विद्यमान बने रहने ही चाहिए।

एक स्वस्थ मानव शरीर में लगभग ६०० खरब कोशिकायें होती हैं। ६०० खरब कोशिकाओं में ६०० खरब नाभिक होते हैं। प्रत्येक नाभिक में गुण सूत्र (क्रोमोसोम) और प्रत्येक गुण सूत्र के भीतर एक बटी हुई रस्सी की सीढ़ी के समान संस्कार कोश (ज़ीन्स) विद्यमान होते हैं, यह संस्कार कोश जो प्रकाश की भी सूक्ष्म अवस्था है, न्यूक्लिक एसिड कहलाते हैं। यह एक प्रकार की विद्युत् चुंबकीय शक्ति है और कोश के भीतर सारे स्थूल द्रव्य में,

तिल में तेल के समान व्याप्त है, इसीलिये वैज्ञानिकों को उसके स्वतंत्र होने पर भी एसिड होने का भ्रम हो रहा है। वस्तुतः अपवाद स्वरूप कुछ प्राणियों को छोड़कर शेष सभी प्राणियों की कोशिकायें अनेक तत्त्वों की बनी होती हैं। जो तत्त्व विकृत होते हैं वहाँ उस तरह के विषाणु पैदा होते रहते हैं। उसका फल बीमारियाँ होती हैं। अपने आप में शुद्ध और समुन्नत कोशिकाओं से जीवन, आयु और प्राण की वृद्धि भी होती रहती है। अब यह विश्वास किया जा रहा है कि प्रत्येक प्राणी की कोशिकाओं का विश्लेषण कर लिया जाए और मानव शरीर में उनकी समीक्षा की जाए तो जिस जाति की कोशिकायें बहुतायत से पाई जा रही होंगी, पूर्व जन्म उसी से संबंधित रहा होगा। कोशिकायें प्रोटोप्लाज्म नामक जीवित पदार्थ से बनी होती हैं। इसके भी साइटोप्लाज्म और नाभिक (न्यूक्लियस) दो भाग होते हैं। साइटोप्लाज्म अर्ध पारदर्शक जल मिश्रित जेली की तरह का होता है, जिसमें अनेक प्रकार के प्रोटीन, लवण, शर्करा और वस्तुयें होती हैं, पर नाभिक के बारे में अभी निश्चित तथ्य नहीं प्राप्त किये जा सके। इसका संबंध प्राण विद्या से है। जब उससे वैज्ञानिक अनेक जानकारियाँ प्राप्त करेंगे तो पूर्व अध्यात्म की और भी विलक्षण पुष्टि होगी। पर एक बात यहाँ अभी सिद्ध हो गई कि आहार क्रम को बदलकर कोशिकाओं को बदला जा सकता है। भले ही यह क्रम मंदगामी हो, पर यदि एक ही प्रकार के पदार्थ खाने में लिये जायें तो उसी प्रकार की कोशिकाओं को विकसित और सतेज कर विषाणुओं और दुर्बल एवं अधोगामी योनियों में पाई जाने वाली कोशिकाओं को हटाया और कम किया जा सकता है। इसका प्रभाव यह होता है कि मनुष्य में जो पाशविक वृत्तियाँ होती हैं, वह इन कोशिकाओं की मंद, अशुद्ध और जटिल स्थिति के कारण होती हैं, उन्हें बदलकर शुद्ध, सात्त्विक बनाया जा सकता है। अस्वाद व्रत और उपवास का

महत्त्व इस जानकारी के आधार पर और भी बहुत अधिक बढ़ जायेगा।

यदि कोशिका को काटकर नाभिक से अलग कर दिया जाए तो कोशिका की मृत्यु हो जायेगी, पर नाभिक में स्वतः निर्माण की क्षमता होती है, हमारा आध्यात्मिक दर्शन यह कहता है कि उस नाभिक में इच्छा, आशा, संकल्प और वासना का अंश रहता है, उसी के अनुरूप वह दूसरा जन्म ग्रहण करता है। कोशिकाओं में पाये जाने वाले क्रोमोसोम्स के क्रियाकलाप के विषय में अभी ठीक-ठीक जानकारी नहीं मिल सकी है। प्रत्येक पदार्थ में क्रोमोसोम की संख्या अलग-अलग होती है। गेहूँ में ४२, मनुष्य शरीर की कोशिकाओं में ४६ और किन्हीं-किन्हीं जीवों की कोशिकाओं में १००-१०० तक क्रोमोसोम पाये जाते हैं। यह क्रोमोसोम भी जीन नामक परमाणुओं से बने होते हैं। इनके अलग-अलग रंग भी होते हैं, उन कणों को एलील कहा जाता है।

जब इन सबकी विस्तृत खोज होगी तो अनुमान है मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सूक्ष्म-तत्त्वों की और भी विशद् जानकारी होगी। इनमें नाभिक हर घड़ी क्रियाशील रहता है और वह इन क्रोमोसोम के माध्यम से साइटोप्लाज्म को भी गतिशील रखता है।

यद्यपि कोशिकाओं के अंदर निर्माण और क्रियाशील रखने वाली शक्ति न्यूक्लियस या नाभिक ही हैं, पर साइटोप्लाज्म का कार्य उससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। सच पूछा जाये तो साइटोप्लाज्म भी उतना ही शक्तिशाली, व्यापक और विशाल है।

जब इनकी वैज्ञानिकों ने विस्तृत खोज की तो पता चला कि एक साइटोप्लाज्म के अंदर एक बड़ी भारी झील है, उसमें कई इतने बड़े महानगर हैं, जितने न्यूयार्क, वाशिंगटन, लंदन, पेरिस,

वारसा या दिल्ली आदि। उसमें छाये हुए कुहरे को हटाकर देखा गया तो एक भयंकर हलचल दिखाई दी। उसी में अनेकों कोश ही प्रकाश-कणों का एक स्वतंत्र शरीर बनाये हुए निकल जाते हैं, उनमें यह सारी याददाश्तें बनी रहती हैं, जो जीवित अवस्था में ज्ञान में आई थीं। इतना ही नहीं इस अवस्था में भी वह ज्ञान-संपादन की क्षमता से परिपूर्ण होता है, केवल स्थूल क्रियायें जैसे—बोलना, पकड़ना, उठना-बैठना आदि उससे नहीं हो सकता, यह किसी विशेष अवस्था में ही संभव है।

उपरोक्त प्रयोग इस बात का साक्षी है कि हमारी मानसिक चेष्टायें जिन्हें विचार, इच्छायें या ज्ञान कुछ भी कहें—मनुष्य शरीर की रासायनिक प्रक्रिया मात्र नहीं, प्रकाश मानव कणों या सूक्ष्म शरीर के कारण है। यह एक ऐसा सिद्धांत है, जो यदि सिद्ध हो जाता है तो न केवल पुनर्जन्म, भूत-प्रेत, दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, विचार-संप्रेषण, परकाया प्रवेश, परलोक आदि की भारतीय मान्यताओं की ही पुष्टि होगी, वरन् योगाभ्यास की उन क्रियाओं का भी समर्थन होगा, जो शरीरधारी आत्म-चेतना के विराट् विकास के लिये बड़ी तपश्चर्या और कष्टसाध्य प्रयोगों द्वारा भारतीय तत्त्वदर्शियों ने आविष्कृत की है। केंद्रक स्थित यह तत्त्व जो स्मृतियाँ अर्जित करता है, मनुष्य शरीर की समस्त ६०० खरब कोशिकाओं में पाया जाता है, यदि उसे खींचकर लंबाई में बढ़ाया जाये तो वह संपूर्ण ब्रह्मांड को अर्थात् अब तक की खोज के अनुसार १८६००० × ६० × ६० × २४ × ३६५¼ × ५००००००० मील लंबा होगा। इतने लंबे फीते में प्रत्येक कोश में १००००००० अक्षरों के हिसाब से उपरोक्त संख्या में इसका गुणा करने से जो संख्या बनेगी, उतने अक्षरों की और उन अक्षरों से बने शब्दों की स्मृति मनुष्य रख सकता है।

यह कोशिकायें शरीर के विभिन्न अंगों में विभिन्न गुणों वाली होती हैं, उसकी जानकारी करने पर शरीर द्वारा शरीर की ही चिकित्सा कर लेना भी संभव हो जायेगा और अधिक भीतरी मर्मस्थलों की खोज हुई तो मनुष्य यंत्रों के द्वारा अनेक ऐसी शक्तियाँ प्राप्त कर लिया करेगा, जिनकी संभावनायें तंत्र-विज्ञान से संबंध रखती हैं। इनमें अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ भी सम्मिलित होंगी।

कोशिकाओं के भाग—कोशिकावरण, प्लास्टिड, वैकुओल, एंडोप्लाज्मिक, रेंटिकुलम, सेंट्रियोल और माइटोकोंड्रिया आदि की विस्तृत जानकारी होगी, तो ब्रह्मांड के अनेक रहस्यों का पता शरीर में ही लग जाया करेगा। इन सब ने शरीर में नहरों और नदियों का सा जाल बिछा रखा है।

देखा गया कि यह संरचनायें जब परस्पर जुड़ती हैं या संबंध स्थापित करती हैं तो एक बड़ी भारी सड़क बनती हैं। लाखों मील लंबी नहरें दिखाई देती हैं। कोशिकाओं के कुछ अंश उतने उठे हुए दिखाई देते हैं, जैसे वह हिमालय अथवा आल्पस पर्वत हों, उन पर प्रकृति के वह पदार्थ भी झलकते और चमकते दिखाई देते हैं, जो पर्वतों और नदियों के किनारे दिखाई देते हैं। नेत्र विस्फारित हो उठते हैं कि आखिर एक परमाणु के अंदर यह सब कैसी हलचल है ? मनुष्य जो भी खाता है, वह शरीर में स्थापित विद्युत् केंद्रों को पहुँचता है, वहाँ से हर स्थान की आवश्यकता के अनुरूप ऊर्जा की सप्लाई होती है, उसे देखकर लगता है इन सब कामों को कोई इंजीनियर बड़ी ही कुशलतापूर्वक चला रहा है।

कोशिकाओं के संबंध में अभी तक स्थूल जानकारियाँ ही मिली हैं, उनके आधार पर ही चिकित्सा जगत् में हलचल पैदा हो गई है, ऐसे-ऐसे इंजेक्शन और औषधियाँ बना ली गई हैं, जिनसे अब मनुष्य का केवल कायाकल्प करना शेष रह जायेगा, बाकी

रोगों को नष्ट करना, दीर्घजीवन प्राप्त करना सब वैज्ञानिकों की मुट्ठी में हो जायेगा। इन कोशिकाओं को जीववैज्ञानिकों ने शरीर के जीवन का आधार कहा है। सर्वप्रथम जीवविज्ञानी जोह्वर ने यह बताया कि रसायन जीव-विज्ञान से गठबंधन हुए बिना चैतन्य जगत् स्थिर नहीं रह सकता। उन्होंने एल्यूमिनियम और यूरिया नामक शारीरिक रसायन का संश्लेषण कर यह सिद्ध किया कि शारीरिक रसायन और धातुओं को प्रयोगशाला में नहीं पकड़ा जा सकता। यह घोषणा रसायन और औषधि जगत् में तीव्र हलचल पैदा करने वाली थी।

तब से अब तक ५०,००० यौगिकों की खोज की जा चुकी है, किंतु जीवन के संबंध में कोई युक्तिसंगत विश्लेषण वैज्ञानिक प्रस्तुत नहीं कर सके। किंतु वैज्ञानिकों ने उसकी खोज का संकल्प अवश्य किया। खोजते-खोजते वे कोशिका और उसके द्वारा उत्पादनों और घटकों तक जा पहुँचे। उन्होंने देखा कि कोशिका (सेल्स, जिनसे मिलकर शरीर बना है) के भीतर जो सैकड़ों यौगिक भरे पड़े हैं, उन्हें निश्चित रूप से प्रयोगशाला में बनाया जा सकता है। उन्होंने इस बहुत ही सूक्ष्म कोशिका के भीतर जीव-विज्ञान को भी सूक्ष्मदर्शी यंत्रों द्वारा देखने से जो निष्कर्ष प्राप्त हुए यद्यपि वह अपूर्ण हैं, पर जितने हैं, जड़वादी मान्यता को काट देने के लिये वही काफी हैं। वैज्ञानिक दृष्टि में कोशिका वह पिंड है, जिसमें संपूर्ण जगत् का सूक्ष्मदर्शन छिपा हुआ है। उसे अध्ययन कर लेने वाला कभी नास्तिक नहीं हो सकता है।

यद्यपि यह अत्यंत सूक्ष्म संरचना है तथापि बोधगम्य (नोएबुल) है। एक बिंदु में मनुष्य के लाल रक्त की लगभग ५ हजार कोशिकायें समा सकती हैं। यह कोशिका-झिल्ली पौधों और बैक्टीरियाज में अपेक्षाकृत अधिक मोटी और कड़ी होती है, यह एक प्रकार की निर्जीव चहार-दिवारी है, सूक्ष्म जलीय जगत् तो

उसके अंदर बंद हैं, आइये उस पर एक दृष्टि डालकर देखें कि वहाँ कौन से तत्त्व क्या कर रहे हैं ?

सूक्ष्मदर्शी यंत्रों द्वारा कोशिका झिल्ली के भीतर की इस रचना को बड़े आश्चर्य के साथ देखा जाता है। यह झिल्ली कोशिका के अंदर समस्त इकाइयों की अपेक्षा अधिक सक्रिय इकाई है, किंतु उसकी सक्रियता भीतर घुसे हुए नाभिक (न्यूक्लियस) की इच्छा के कारण है। न्यूक्लियस ही वह चेतना और केंद्रीभूत सत्ता मानी जा रही है, जिस पर कोशिका का सारा क्रिया व्यापार चलता है। यह एक अत्यंत सूक्ष्म पर विराट्-जगत् का प्रतिनिधि है। उसी को देखकर आइंस्टाइन ने कहा था कि "यह क्षितिज भी अंडाकार (कर्व) स्थिति में है" जब लोगों ने पूछा कि उसके बाद क्या है ? तो उसने कहा—"कुछ नहीं"। वह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है कि यह संसार जिसकी सीमा अनंत है, वह भी घिरा हुआ, मुड़ा हुआ अर्थात् असीम है, सीमारहित है।

जो भी हो, हमें उस कोशिका-झिल्ली का अध्ययन करना है। यह झिल्ली उन तत्त्वों को छाँटती है, जिनकी न्यूक्लियस इच्छा करता है, जिस प्रकार सिनेमा हाल के गेट पर खड़े हुए चौकीदार जिसके पास जैसा टिकट होता है, उसी तरह उन्हें आने देते हैं, उसी प्रकार कोशिका-झिल्ली भीतर केवल उन्हीं तत्त्वों को जाने देती हैं, जिसकी न्यूक्लियस इच्छा और प्रेम करता है। इस न्यूक्लियस के अतिरिक्त वहाँ कमजोर रेशों और अपेक्षाकृत मजबूत तंतुओं का जाल-सा बिछा हुआ है। इन्हें क्रोमैटिन कहते हैं, क्योंकि यह रंगों को जज्ब करते हैं। जब एक कोशिका दूसरी कोशिका में विभाजित होती है तो यह तंतु ही व्यावर्त्तन, पृथक्करण और पुनर्व्यवस्थापन के रूप में एक प्रकार का सामूहिक नृत्य-सा करते हैं। आधुनिक नृत्यकार भी उस नृत्य की गति का मुकाबला नहीं कर सकते।

यह गति बड़ी रहस्यपूर्ण होती है, यह उन चार तत्त्वों को क्रियाशील करने का वैज्ञानिक तरीका है, जिससे नई सृष्टि की उत्पत्ति होती है। नये बालक का जन्म भी इसी विभाजन क्रिया से होता है। किंतु वह सब करने वाला पाँचवाँ आकाश तत्त्व भी वहाँ विद्यमान है। न्यूक्लियस उसी आकाश में स्थित है, अर्थात् वह किसी भी तत्त्व पर टिका हुआ नहीं है, जबकि कोशिका-झिल्ली के अंदर गति करने वाले सभी पदार्थ परस्पर संबद्ध होते हैं।

न्यूक्लियस और कोशिका परिधि के बीच वाले भाग में—जिसे साइटोप्लाज्म कहते हैं, अनेक संरचनायें होती हैं। छोटी सघन पहाड़ियाँ माइटोकोंड्रिया और उससे भी छोटे टीले माइक्रोसोक्स मिट्टी के कणों के बने प्रतीत होते हैं। कहीं-कहीं पतले तंतु (गोल्गीबॉडीज) टेढ़े-मेढ़े ढंग से पड़े लहराते हैं, जिससे हवा का अस्तित्व दर्शन होता है। कुछ कोशिकाओं में दूसरी वस्तुयें जैसे पिगमेंट, स्टार्च, चर्बी की गोलियाँ बिखरी पड़ी रहती हैं। कोश में ७० प्रतिशत जल और इन तत्त्वों को क्रियाशील रखने वाले तापीय कण भी रहते हैं। इस बिंदु जगत् में ही चारों तत्त्वों के साथ आकाश भी छाया हुआ है। वैज्ञानिक इस सूक्ष्म रचना से दंग रह गये और अपने आपसे पूछने लगे, यदि कोशिका ही जीवन संरचना की इकाई है तो क्या उसके कार्य की भी इकाई है ? रक्त परिसंचरण के आविष्कारकर्ता विलियम हार्वे ने उसका उत्तर देते हुए कहा था—"हम जो कुछ जानते हैं, वह उसकी तुलना में जो अब भी अज्ञात है, बहुत कम है।" यह वक्तव्य आज भी उतना ही सत्य है। वैज्ञानिक यह मानते हैं, कोशिका के आकाश में स्थित जगत् के संपूर्ण अध्ययन के लिये ३३५ वर्ष की अवधि भी बहुत अल्प है। चार्वाक और नीत्से ने तो न जाने कैसे प्रत्यक्ष देहात्मवाद को ही सर्वस्व कह दिया। आज के वैज्ञानिक उसे एक मूर्खतापूर्ण प्रलाप ही कहते हैं।

शरीर की रहस्यमय विलक्षणतायें

दृश्यमान शरीर की—स्थूल, संरचना तो अन्य प्राणियों जैसी ही है, पर उसके अंतराल में प्रवेश करने पर पता चलता है कि पग-पग पर उसमें विलक्षणताएँ भरी पड़ी हैं। इनके स्वरूप और उपयोग को जाना जा सके तो तिलस्म के वे पर्दे उठ सकते हैं, जिनके भीतर रहस्यमय सिद्धियों के अनंत भांडागार भरे पड़े हैं। काय-कलेवर में प्रजनन क्षमता की सूत्रधार अत्यंत छोटी इकाई है—जीन्स। यह आँख से दृष्टिगोचर न होने वाले शुक्राणुओं और डिंबाणुओं के अंतराल में रहने वाले अत्यंत ही क्षुद्र घटक हैं। इतने पर भी उसकी क्षमता देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। यह नहीं सोचना चाहिए कि हारमोन या जीन्स ही रहस्यमयी क्षमताओं से सुसंपन्न हैं। सच तो यह है कि पूरी काया ही तिलस्मी रहस्यों से भरी-पूरी है। दुर्भाग्य यही है कि हम न तो उसकी सामर्थ्य को समझ पाते हैं और न उसके सदुपयोग का ही साहस जुटाते हैं।

काया का स्थूल भाग अन्नमय कोश छोटी-छोटी कोशिकाओं (सैल्स) से बना है, जिनके अंदर एक द्रव्य 'साइटोप्लाज्म' (वसामय पीला सा द्रव्य) पदार्थ भरा रहता है। इसके बीच में अवस्थित होता है कोशिका का नाभिक अथवा केंद्रक (न्यूक्लियस)। पुरुष की शुक्राणु कोशिका अथवा नारी की अंडाणु कोशिका के नाभिक में छोटे-छोटे धागे जैसे गुण सूत्र (क्रोमोसोम) होते हैं। एक नाभिक में इनके २३ या २४ जोड़े होते हैं। इन्हीं से लाखों की संख्या में 'जीन्स' चिपके रहते हैं। नये मनुष्य शरीर के निर्माण तथा उनमें अनुवांशिकीय गुण धर्मों का विकास इन्हीं पर निर्भर करता है।

यह जीन्स क्या हैं ? कैसे यह अपनी आश्चर्यजनक भूमिका पूरी करते हैं ? इस रहस्य पर से विज्ञान अभी पर्दा उठा नहीं

सका है। उनके संबंध में बड़ी तेजी से शोध कार्य चल रहे हैं, बहुत से रहस्य खुले भी हैं, फिर भी वह नहीं के बराबर हैं।

अभी तक के अध्ययन के आधार पर 'जीन्स' छोटे-से विद्युन्मय पुटपाक या पुड़ियाँ (पैकैट) हैं। माना जाता है कि इनकी रचना कई तरह के न्यूक्लियक अम्लों के संयोग से हुई है। उनमें से अभी केवल दो के बारे में जाना जा सका है। वे हैं—(१) डी० एन० ए० (डी आक्सी राइबो न्यूक्लीक एसिड) (२) आर० एन० ए० (राइबो न्यूक्लीक एसिड)।

जीन्स की संरचना के बारे में अभी तक नहीं जाना जा सका है, किंतु यह जानकारियाँ निश्चित रूप से हो गयी हैं कि शरीर के अंग-प्रत्यंग की विशिष्ट रचना से लेकर अनेक परंपरागत स्वभावों, रोगों तथा गुणों के विकास की आश्चर्यजनक क्षमता इनमें है। इनके गुणों और कार्यकलापों को कैसे नियंत्रित किया जाए ? यह पता विज्ञान अभी नहीं लगा सका है, किंतु यह माना जाने लगा है कि यदि 'जीन्स' के गुणों और कार्य-प्रणाली को प्रभावित किया जा सके, तो आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। यह अन्नमय कोश के छोटे से घटक एक कोशिका के नाभिक में रहने वाले नगण्य आकार वाले विद्युन्मय पैकेट मनुष्य के आसपास के वातावरण से लेकर उसके विचारों और भावनात्मक विशेषताओं के संस्कार ग्रहण करने में समर्थ हैं।

मनुष्य के विकास के संबंध में भारतीय मान्यता यह रही है कि उस पर अनुवांशिकता के साथ-साथ बाह्य वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। पहले इस मान्यता के प्रति उपेक्षा बरती जाने लगी थी।

यह स्पष्ट हो गया है कि अपने वातावरण तथा अपनी चेष्टाओं द्वारा व्यक्ति जिन स्वभाव-गुणों को अर्जित करता है, वे वंशानुक्रम से प्राप्त नहीं होते और न ही कोई व्यक्ति उन अर्जित

विशेषताओं को वंशानुक्रम द्वारा अपने बच्चों को प्रदान कर सकता है। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति ने अनेक भाषाएँ सीखी हैं, तो वह उस भाषा-ज्ञान को अपने बच्चों को वंशानुक्रम द्वारा नहीं दे सकता। बच्चों को भी भाषा-ज्ञान की प्रचलित विधियों को ही अपनाना होगा तथा मेहनत करनी पड़ेगी। वहीं दूसरी ओर यह भी स्पष्ट हो गया है कि वंशानुक्रम का निश्चित प्रभाव संतान पर पड़ता है। आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) का सारा ढाँचा ही इसी आधार पर खड़ा है। यह सही है कि कोई भी व्यक्ति जंगली बेर के बीज बोकर उनसे गुलाब के फूलों की आशा नहीं कर सकता। गोरैया के अंडों को सेकर उनमें से मोर के बच्चे कौन निकाल सकता है ? लेकिन जिन पौधों के बीज बोये जाते हैं, उनसे उन्हीं जैसे पौधे आखिर क्यों उगते हैं ? चूहों से चूहा और बिल्ली से बिल्ली ही क्यों पैदा होती है ? इसका उत्तर है—आनुवंशिकता अर्थात् नियमित वंश परंपरा, जिनके कारण ही ऐसा होता है। जो वस्तु जिस वंश की होगी, उसका बीज डाले जाने पर वैसा ही फल होगा। आनुवंशिकता में काम करने का ढंग भी शामिल है और चीजों का कद तथा रंग भी। उदाहरण के लिये बया पक्षी को बढ़िया लटकने वाला घोंसला बनाना किसी को सिखाना नहीं पड़ता है।

आनुवंशिकता अपने पूर्वजों से मिलने वाली विशेषताओं का ही दूसरा नाम है। वैज्ञानिक जानते हैं कि जीवों में जो विशेषतायें होती हैं, वे उन्हें अपने माता-पिता से अत्यंत सूक्ष्म कणों के रूप में मिलती हैं। इन सूक्ष्म कणों को 'जीन' कहा जाता है। हमारा शरीर बहुत-सी कोशिकाओं से मिलकर बना है। 'जीन' कोशिका का ही एक भाग है। अगर किसी बट-वृक्ष की शाखा को कहीं उसके अनुकूल स्थान में ले जाकर बो दिया जाए तो वह भी मूल पेड़ की तरह ही फलने-फूलने लगेगी। उसकी कोशिकाओं के 'जीन' अपने

पहले के पेड़ की ही भाँति होंगे। ठीक उसी तरह जिस तरह किसी स्पंज के टुकड़े में वैसे ही छिद्र होते हैं, जैसे उस स्पंज में थे—जिसमें से कि टुकड़े को तोड़ा गया है।

अधिकांश पौधों और जीवों की उत्पत्ति नर और मादा से होती है। कुछ 'जीन' नर से और कुछ मादा से मिलते हैं। झरबेरी झाड़ी के गुलाब तो नहीं, लेकिन ऐसा पौधा अवश्य उगा सकते हैं, जिसमें एक की बजाय दो तरह के फूल हों। काली बिल्ली का बच्चा एकदम सफेद हो सकता है। यदि कोई पौधा या जानवर दो तरह की विशेषता के 'जीन' आनुवंशिकता द्वारा प्राप्त करता है और दोनों का प्रभाव बराबर रहता है तो दोनों के मिलने से तीसरी विशेषता उत्पन्न होती है। अगर लाल गाय और सफेद रंग का सांड़ हो तो उनका बछड़ा न तो सफेद होगा और न लाल। वह भूरा, यानी दोनों के बीच के रंग का हो सकता है। ऐसा हो जाने के नियम की वैज्ञानिक व्याख्या आनुवंशिकता के सिद्धान्त के आधार पर की जाती है। 'जीन' ही इस आनुवंशिकता के वाहक हैं और आनुवंशिकता की बुनियादी इकाई हैं। अभी तक किये गये परीक्षणों से यही जाना जा सका है कि व्यक्ति की शारीरिक विशेषताएँ जैसे रंग, रूप, नेत्र, त्वचा, खून का प्रकार, लंबाई, ठिगनापन आदि सब ही आनुवंशिक होते हैं। ये शारीरिक गुण भी मात्र माता-पिता से नहीं प्राप्त होते, वरन् वे दादा, परदादा तथा अन्य पूर्वजों से क्रमशः संक्रमित होकर आते हैं। वंशानुगत गुणों में माता-पिता का दाय प्रत्येक गुण में आधा होता है। यानी माँ का एक चौथाई और पिता का एक चौथाई। उनके पूर्व के चार पितरों में प्रत्येक का दाय प्रत्येक गुण का सोलहवाँ भाग होता है अर्थात् चारों पितरों का कुल दाय एक चौथाई भाग होता है। शेष एक चौथाई और पुरानी पीढ़ियों से आते हैं।

व्यक्ति के संस्कार तो उसके जन्म-जन्मांतरों की संचित संपदाएँ और साधन हैं। किंतु उसके उपयुक्त उपकरण—अन्नमयकोश में निर्माण के घटक जीन्स-क्रोमोसोम्स का भी स्वरूप-निर्धारण कितनी सूक्ष्मताओं और जटिलताओं के आधार पर होता है, यह आनुवंशिकी की आधुनिक खोजों द्वारा भी स्पष्ट होता है। भारतीय मनीषी इन सूक्ष्मताओं से परिचित थे, तभी वे सुसंतति के लिए माता-पिता का चरित्रगत, तपस्वी—संयमी होना अनिवार्य बतलाते थे। इंद्रिय-लिप्साओं की खुजली को शांत करते रहने की कुचेष्टाओं के साथ सुसंतति की आकांक्षा करते रहना एक असंभव कल्पना मात्र है। उसके सफल होने की कदापि कोई भी संभावना नहीं है। अन्नमय कोश की इन सूक्ष्मताओं से परिचित होकर, अपना जीवनक्रम उस प्रकार व्यवस्थित कर व्यक्ति न केवल सुयोग्य संतति के जनक-जननी बनने की क्षमता से, अपितु उन अनेक विशिष्ट क्षमताओं, विभूतियों से संपन्न बनता है, जिनसे मनुष्य शरीर की सार्थकता और गरिमा है। अन्नमय कोश की साधना स्वयं की इन क्षमताओं के विकास का ही नाम है।

आनुवंशिका का प्रभाव बिल्कुल सीधा और स्थूल नहीं होता। उदाहरण के लिए किसी माता-पिता में से दोनों को या किसी एक को टी० बी० रोग (क्षयरोग) हो तो इसका अर्थ कदापि नहीं कि बच्चे को जन्म से ही टी० बी० (क्षयरोग) हो, अपितु इसका सिर्फ यह अर्थ है कि बच्चे के शरीर में ऐसी वृत्ति या तत्परता विद्यमान है कि क्षय रोग के कीटाणु शरीर में पहुँचते ही वहाँ जड़ पकड़ लेंगे।

इसी प्रकार मान लीजिये कि बढ़ई है, जो अपने काम में बड़ा दक्ष है। यह कार्यदक्षता बच्चे में जन्मजात रूप से नहीं उत्पन्न होती, अपितु यदि बच्चे को भी कुशल बढ़ई बनाना है, तो उसे बढ़ईगीरी का काम सिखाना ही होगा। हाँ, उस बच्चे के हाथ ऐसे

हो सकते हैं, जिनके द्वारा कि उन औजारों का अधिक अच्छा उपयोग संभव हो, जो बढ़ईगीरी के काम आते हैं।

इसीलिए आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनों को समान महत्त्व दिया जाता है। आनुवंशिकता द्वारा अर्जित गुण नहीं प्राप्त होते। कुछ जन्मजात गुणों के आधार ही आनुवंशिकता को माना जाता है। ये जन्मजात गुण वंशानुक्रम के लक्षण कहे जाते हैं। वंशानुक्रम के लक्षण क्रोमोसोमों के आधार पर प्राप्त होते हैं। क्रोमोसोमों में होते हैं—जीन, जो व्यक्ति के 'करेक्टरिस्टिक्स' का निर्माण करते हैं।

'जीन' का व्यवहार या आचरण से सीधा संबंध नहीं होता। जीन शरीर के ऊतक तथा अंगों के विकास को निर्देशित-नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार के शरीर की क्रियाशीलता को भी नियंत्रित करते हैं। शरीर की ये क्रियाएँ स्पष्टतः व्यवहार को भी प्रभावित करती हैं और उस रूप में जीन्स का संबंध व्यवहार से भी होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति वंशानुक्रम से छोटी टाँगें, ठूँठदार अँगुलियाँ या बहरे कान प्राप्त करता है, तो निश्चय ही कुछ क्षेत्रों में उसकी योग्यता सीमित हो जायेगी। इसी प्रकार शारीरिक क्रियाओं में भाग लेने वाले हजारों रासायनिक तत्त्व भी जीन्स द्वारा ही निर्धारित होते हैं। जैसे दृष्टि के लिए प्रकाशसंवेदी तत्त्व एवं रक्त के जमने में कई रासायनिक तत्त्व। इन तत्त्वों की उपस्थिति सशक्ता या दुर्बलता का संबंध जीन्स से ही होता है। ऐसे अनेक लक्षण वंशानुक्रम से संबंधित होते हैं।

वंशानुक्रम के आधारभूत घटकों, जीन्स और क्रोमोसोम्स के अध्ययनों के निष्कर्ष, इस तथ्य के द्योतक हैं कि अन्नमय कोश में निर्माण का सूक्ष्म आधार कितना व्यापक और जटिल होता है ? पौष्टिक भोजन मात्र से अन्नमय कोश सुदृढ़ नहीं हो जाता। इसके विपरीत अन्नमय कोश की सुदृढ़ता ही भोजन के रस-पारिपाक का कारण व आधार बनती है। बढ़िया खाने-पहनने की चिंता करते

रहने को ही जीवन का पुरुषार्थ मान बैठने वाले अन्नमय कोश के निर्माण के आधारों से अनभिज्ञ रहकर उसे अस्त-व्यस्त और दूषित, विकृत बनाते रहते हैं और भावी संततियों को भी उस विकृति का अभिशाप दे जाते हैं।

एक जीन युग्म शरीर के किसी विशेष 'करेक्टरिस्टिक' के विकास का निर्देश करता है। आँखें भूरी हैं या नीली, बाल घने-काले हैं या हल्के-स्वर्णिम हैं अथवा लाल, घुँघराले हैं या सीधे, सामान्य बाल हैं या गंजापन है, दृष्टि सामान्य है या रतौंधी ज्यादा होने की संभावना है, श्रवण-शक्ति सामान्य है या जन्मजात बहरापन है, रक्त सामान्य है या कि 'हीमोफीलिया' का दोष है, रंग-बोध स्पष्ट है या वर्णांधता दोष है, उँगलियों का अँगूठों की संख्या सामान्य है या कम-अधिक है, किसी जोड़ में कोई उँगली छोटी-बड़ी तो नहीं है, सभी अवयव सामान्य हैं या कुछ अवयव विरूप हैं आदि सभी शारीरिक 'करेक्टरिस्टिक्स' जीन-युग्मों पर ही निर्भर करते हैं।

फ्रांसीसी दार्शनिक मांटेन को ४५ वर्ष की आयु में पथरी की बीमारी हुई। उसके पिता को यह रोग २५ वर्ष की आयु में आरंभ हुआ। जबकि मांटेन के जन्म के समय उसके पिता सिर्फ इक्कीस वर्ष के थे। उस समय उन्हें यह रोग नहीं था। लेकिन उनके जीन्स में इस रोग के आधार विद्यमान थे। मांटेन की पित्ताशय की पथरी की बीमारी कई पीढ़ियों से चली आ रही थी।

बालकों का गेलेक्येसीनिया रोग जीन्स से ही संबंधित होता है। वह जीन, जब 'यूरी डायल ट्रांसफर एंजाइम' नहीं बनने देता, तो बच्चे दूध में रहने वाली मिठास—गैलेक्टोस—को पचा नहीं पाते। फलतः वह खून में जमा होती रहती है और जिगर में इकट्ठी होकर बच्चे का पेट खराब कर देती है तथा मृत्यु का भी कारण बन बैठती है।

'एक्रोडमे टाइटिस ऐटेरोपैथिका' नामक रोग का कारण भी मुख्यतः जीन्स की विकृतियाँ ही होती हैं। आँख का कैंसर—रेटीनो ब्लास्टीमा—जीन्स-दोष का ही परिणाम है। जीन्स की 'एक्रोड्रोप्लायिसा' विकृति के कारण बच्चे अविकसित रह जाते हैं। वे जल्दी मरते हैं। बच गये तो भी वंश-वृद्धि में असमर्थ होते हैं। ऐसे दोष वाली महिलाएँ गर्भवती होने पर स्वयं की भी प्राण-रक्षा नहीं कर पातीं, बच्चे की जान तो खतरे में होती ही है।

'राइजोंवियम' नामक जीवाणु की जीन को यदि धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि फसलों की जड़ों में पलने वाले किसी जीवाणु में प्रत्यारोपित करना संभव हो तो इन फसलों के लिए अधिक उर्वरक नहीं खर्च करना पड़ेगा। भारत समेत विश्व भर की आनुवंशिकी प्रयोगशालाओं में इस हेतु प्रयास हो रहा है।

स्थूल दृष्टि से उपेक्षणीय लगने वाले इस अन्नमय कोश में अति सूक्ष्म घटक 'जीन्स' के साथ मनुष्य के उत्कर्ष की कितनी धारायें, संभावनायें जुड़ी हैं, इसे देखकर इसके रचयिता उस महान् कलाकार की कलाकारी को शत-शत नमन ही करते बनता है। अंतर में बार-बार यही हूक उठती है कि क्या ही अच्छा होता कि हम इन महत् शक्तियों के जागरण और उपयोग की विधि जान पाते, सीख पाते और अपना पाते।

❐ ❐

प्रत्यक्ष से भी अति समर्थ अप्रत्यक्ष

योग वासिष्ठ में एक महत्त्वपूर्ण आख्यायिका आती है। लीला नाम की रानी के पति का देहावसान हो जाता है। पति के निधन से वह अत्यधिक दुःखी होती है। तब महर्षि नारद आकर कहते हैं, जिसके लिये तुम विलाप कर रही हो, वह इसी तुम्हारे उद्यान में एक नया परिवेश धारण कर चुके हैं। वे लीला को अंतर्दृष्टि देते हैं, तो वह देखती हैं कि उसके पति एक कीटक के रूप में विद्यमान हैं, यही नहीं वहाँ भी उनके पास कई रानियाँ हैं। वे उनमें आसक्त से दिखे। वह जिनकी याद में घुली जा रही थी, उसे उसकी सुध तक नहीं थी। लीला ने अनुभव किया कि यह माया, मोह और आसक्ति मनुष्य का नितांत भ्रम और अज्ञान है। उससे भी बड़ा अज्ञान है—मृत्यु की कल्पना। वास्तव में जीव-चेतना एक शरीर से दूसरे शरीर, एक जगत् से दूसरे जगत् में परिभ्रमण करती रहती है। जब तक वह सत्य लोक या अमरणशील या परमानंद की स्थिति नहीं प्राप्त कर लेता तब तक यह क्रम चलता ही रहता है।

उक्त आख्यायिका का तत्त्वदर्शन बड़े ही महत्त्व का है। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—

सर्गे सर्गे प्रथग्रूपं सन्ति सर्गान्तराण्यपि।
तेष्वप्यन्तस्थसर्गौघाः कदलीदलपीठवत्।।

—योग वासिष्ठ ४।१८।१६-१७

आकाशे परमाण्वन्तर्द्रव्यादेरणुकेऽपि च।
जीवाणुर्यत्र तत्रेदं जगद्वेत्ति निजं वपुः।।

—योग वासिष्ठ ३।४४।३४-३५

अर्थात्—जिस प्रकार केले के तने के अंदर एक के बाद एक अनेक परतें निकलती चली जाती हैं, उसी प्रकार एक सृष्टि में अनंत सृष्टियों की रचना विद्यमान है। संसार में व्याप्त प्रत्येक परमाणु में स्वप्न-लोक, छाया-लोक और चेतन जगत् विद्यमान हैं

उसी प्रकार उनमें प्रसुप्त जीवन, पिशाच गति तथा चेतन समुदाय की सृष्टियाँ ठीक इस दृश्य जगत् जैसी ही विद्यमान है।

देखने में यह प्रत्यक्ष जीवन और गति अधिक समर्थ और शक्तिशाली दिखाई देते हैं; किंतु यह अपनी भूल तथा स्थूल दृष्टि मात्र है। यदि अपने ज्ञान चक्षु जाग्रत् हो जायें और लीला की तरह अंतर्दृष्टि से सृष्टि की गतिविधियों, उन अवस्थाओं की समर्थता को समझ पायें तो यह पता चलेगा कि शक्ति और सामर्थ्य की दृष्टि से दृश्य-जगत् सबसे कमजोर है। उसके आँखें, कान, नाक, हाथ-पाँव, पेट, आँतों की सामर्थ्य बहुत सीमित है, उससे भी आगे उसका प्रेत या उसका छाया शरीर विद्यमान है, यह अपेक्षाकृत अधिक सामर्थ्यवान् है। वह वेद की तरह गतिशील, पहाड़ तक उठा लेने जितना बलवान् और निमिष मात्र में सैकड़ों मील दूर की खबर ले आने वाला अंतर्दृष्टा है। उससे भी आगे की एक और सत्ता है—देव सत्ता—समस्त शक्तियों, साधनों और दिव्य ज्ञान से परिपूर्ण हैं। वहाँ न भय है, न ईर्ष्या, न द्वेष और न अभाव। मृत्यु की पीड़ा भी नहीं सताती। प्रियजनों का वियोग भी नहीं रुलाता। सृष्टियों और सृष्टिचरों का यह तारतम्य उस परिपूर्ण अवस्था तक पहुँचा देता है, जहाँ न इच्छायें हैं, न वासनायें हैं, न जरा है, न व्याधियाँ, न कर्तृत्व। इसे आनंदमय स्थिति, तुरीयावस्था, साक्षी, द्रष्टा, परमानंद की स्थिति कहा गया है। भारतीय दर्शन इस स्थिति को प्राप्त करने की निरंतर प्रेरणा देता रहता है और उसे ही परम पुरुषार्थ की संज्ञा देता है, यही जीवन लक्ष्य भी माना गया है।

भारतीय दर्शन के इस सत्य को अब भौतिक विज्ञान भी प्रमाणित करने लगा है। पिछले चालीस वर्षों से चोटी के खगोलज्ञ इस खोज में जुटे हैं कि वह यह जान पायें कि क्या यह सृष्टि और यहाँ के निवासी ही अंतिम हैं या और भी कोई ब्रह्मांड है। इस खोज में अब तक जो निष्कर्ष निकले हैं, वे भौतिक दृष्टि को

चकमका देने वाले हैं। स्थूल जगत् के अंदर क्रमशः अधिक सूक्ष्म और समर्थ क्षेत्रों की जैसे-जैसे पहचान होती जा रही है वैसे-वैसे आश्चर्य बढ़ता जा रहा है।

एक के भीतर अनेक सृष्टियों की कल्पना वैसी ही है जैसे जल के भीतर एक और जल। यों सामान्य बुद्धि से परीक्षण करना चाहें या हाथ से अलग करना चाहें तो सामान्य जल से इस भारी जल को अलग नहीं किया जा सकता। अप्रत्यक्ष के अस्तित्व को स्वीकार न करने का कारण यही है कि हम उतनी ही बुद्धि को पूर्ण माने बैठे हैं, किंतु वैज्ञानिक जब प्रयोगों द्वारा उसका प्रभाव स्पष्ट दिखा देते हैं, तो हमें उस बात को मानने को विवश होना पड़ता है। जल के भीतर जल की बात भी ऐसी ही है। सर्वप्रथम १६३१ में पहली बार जब वैज्ञानिक यूरे ने जल के भीतर 'भारी जल' की उपस्थिति से अवगत कराया तो लोग आश्चर्यचकित रह गये। इसे समझने के लिये पानी की परमाणविक रचना समझना आवश्यक है। पानी हाइड्रोजन के दो और ऑक्सीजन के एक परमाणु के संयोग से बनता है। सामान्य जल तथा भारी जल में अंतर हाइड्रोजन के हल्के और भारी होने से पड़ता है। हाइड्रोजन संसार का सबसे हल्का तत्त्व है, क्योंकि उसने नाभिक (न्यूक्लियस) में एक ही प्रोटान और एक इलेक्ट्रॉन होता है, न्यूट्रान नहीं होता। किंतु जब उसमें एक प्रोटान के अतिरिक्त एक न्यूट्रान भी आ जाता है तो यही जल अणु भारी जल हो जाता है और उसकी विशेषतायें हजार गुना अधिक बढ़ जाती हैं।

इसे सामान्य जल का सार कह सकते हैं, तभी तो ६५०० किलोग्राम पानी में से उसका कुल १ किलोग्राम अंश ही मिलता है, किंतु महत्त्वपूर्ण इतना है कि सामान्य जल १०० डिग्री सेंटीग्रेड पर उबलने लगेगा और शून्य पर जमकर बर्फ हो जायेगा, किंतु भारी जल १०१.४ डिग्री से० ग्रे० पर उबलता और शून्यावस्था से पूर्व ही

अर्थात् ३.८ डिग्री सेंटीग्रेड पर ही जम जाता है। एक लिटर सामान्य जल का वजन जहाँ मात्र एक किलोग्राम होता है, वहाँ भारी जल ११०० ग्राम अर्थात् १ किलो १ सौ ग्राम होता है। काम तो यह उससे भी महत्त्वपूर्ण करता है। अभी यूरेनियम के विखंडन की तकनीक का पूरी तरह का विकास नहीं हुआ, अतएव जहाँ भी अणु रिएक्टर हैं वहाँ 'मंदक' और 'शीतक' का प्रयोजन यही जल पूरा करता है। इसकी १८० मीट्रिक टन मात्रा से २०० मेगावाट शक्ति की विद्युत् पैदा की जाती है।

प्रसिद्ध डच व्यापारी इंटानवान लीवेन हाक को शीशों के कोने रगड़-रगड़कर उनके लेन्स बनाने का शौक था। एक बार उसने ऐसा लेन्स बना लिया जो वस्तुओं की आकृति २७० गुना परिवर्द्धित दिखा सकता था। उसने इस लेन्स की सहायता से जब पहली बार गंदे पाने को देखा तो उसमें लाखों की तादाद में कीटाणु दिखाई दिये। उसके मन में जिज्ञासा जाग्रत् हुई, फलस्वरूप जब अपने शुद्ध जल का निरीक्षण किया तो उसने यह देखा कि वहाँ भी जीव विद्यमान हैं और वह न केवल तैर रहे हैं, अपितु अनेक सूक्ष्म से सूक्ष्म और बुद्धिमान् प्राणी की तरह क्रीड़ायें भी कर रहे हैं, वह इस दृश्य से इतना अधिक अभिभूत हो उठा कि उसने अपनी पुत्री मारिया को भी बुलाया और दोनों घंटों इस कौतूहलपूर्ण दृश्य को अवाक् देखते रहे। अब तो उससे अनेक गुना शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी बन गये है और उनसे दृश्य जगत् के निर्माण के आधार परमाणुओं का विस्तृत अन्वेषण और अध्ययन भी संभव हो गया है। ब्रह्मांडों के भीतर अनंत ब्रह्मांडों की, पदार्थ में विलक्षण अपदार्थ और परम पदार्थ की उपस्थिति जानने के लिये विश्व ब्रह्मांड की ईंट परमाणु की अंतर्रचना का अध्ययन आवश्यक है।

परमाणु की लघुता को नापना हो तो कोई न कोई सापेक्ष सिद्धांत ही अपनाना पड़ेगा, उदाहरण के लिए एक काँच के गिलास में भरे पानी के परमाणुओं को यदि बालू के कण बराबर मान लिया जाये तो गिलास की समस्त बालू अटलांटिक महासागर में डाल देने से वह पटकर एक खेल का लंबा-चौड़ा मैदान बन जायेगा। परमाणु पदार्थ की अत्यंत लघुतम इकाई है। यदि २५ करोड़ परमाणुओं, २५ करोड़ सैनिकों की एक हथियार बंद सेना मानकर उन्हें एक पंक्ति में 'फालेन' होने का आदेश दिया जाये तो उनके लिए एक इंच भूमि पर्याप्त है। यह अंश भार में इतना क्षुद्र होता है कि हाइड्रोजन के एक परमाणु का भार कुल १।१०००००००००००००००००००००००० ग्राम से भी कम होगा, किंतु इनकी शक्ति बहुत अधिक होती है, उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

परमाणु पदार्थ का सबसे छोटा टुकड़ा होता है। इसके स्वरूप को देखना हो तो अपनी आँख और बुद्धि को १ इंच के २० करोड़वें भाग से भी अधिक सूक्ष्म करना पड़ेगा। यदि किसी शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से देखा जाये तो इस परमाणु के भीतर भी एक व्यवस्थित सृष्टि मिल जाती है। यह आश्चर्य की बात है कि परमाणु भी पोला होता है। उसके बीचों-बीच केंद्रक और नाभिक के अतिरिक्त शेष भाग खाली पड़ा रहता है। केंद्रक और खाली पड़े पड़े स्थान की अलग-अलग माप करनी हो तो सापेक्ष गणना करनी पड़ेगी। यदि न्यूक्लियस या केंद्रक को गेंद के बराबर मानलें तो परमाणु का शून्य-आकाश २००० फीट व्यास के घेरे जितना अर्थात् १०′ × २०′ साइज के १० बड़े कमरों के बराबर होगा।

अभी तो इनमें और भी कई गुण विद्यमान हैं। न्यूट्रॉन, प्रोटॉन, पाजिट्रॉन आदि इनकी संख्या लगभग प्रमुख ३० तथा अन्य लगभग २०० हैं। प्रत्येक पदार्थ इन अधो परमाणिक कणों (सब

एटॉमिक पार्टिकल) से बने होते हैं। इनकी संख्या किसी में कम किसी में अधिक होती है। उसी के अनुसार वे हल्के व भारी होते हैं। यह तत्त्व भी एक से अधिक हो सकते हैं। हाइड्रोजन के परमाणु में केवल १ प्रोटॉन और १ ही इलेक्ट्रॉन होता है। इसलिये वह दुनिया का सबसे हल्का तत्त्व है। इसमें न्यूट्रॉन नहीं होते। हाइड्रोजन के बाद हीलियम आती है, इसमें प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉनों की संख्या तो एक-एक बढ़ी ही, साथ ही न्यूट्रॉन भी दो बढ़ जाते हैं। तत्त्वों में इन अणुओं के बढ़ने का क्रम इसी तरह बढ़ता रहता है। प्राकृतिक रूप से उपलब्ध यूरेनियम जो अब तक का सबसे भारी तत्त्व माना जाता है—में ६२ प्रोटॉन, १४६ न्यूट्रॉन तथा ६२ इलेक्ट्रॉन होते हैं। प्रोटॉन धन आवेश और इलेक्ट्रॉन ऋण विद्युत् आवेश होता है। इनकी संख्या परमाणु में समान होती है। इसीलिये प्रत्येक कण में विद्युत् ऊर्जा होते हुए भी उसका प्रभाव व्यक्त नहीं होता।

इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि कण अत्यधिक वेग वाले होते हैं, किंतु तो भी इनकी गति प्रकाश की गति से कम होती है। डॉ० सुदर्शन तथा टैक्सास यूनीवर्सिटी अमेरिका के उनके सहयोगी डॉ० विलानिडक ने ऐसे कणों को टॉर्डियान की संज्ञा दी है। इन कणों में द्रव्य-भार शून्य से कुछ अधिक मात्रा में विद्यमान रहता है, किंतु इससे भिन्न प्रकार के कुछ कण वह होते हैं जिनमें द्रव्य भार बिल्कुल नहीं होता, किंतु जिनकी गति प्रकाश की गति १८६००० मील प्रति सेकंड या २९९०६२.५ किलोमीटर प्रति सेकंड होती है। इन्हें "लक्सॉन" कहा जाता है। इस वर्ग में फोटॉन, न्यूट्रिनों तथा ग्रेवीटोन आते हैं।

"टेकियॉन" इन दोनों से भी भिन्न कोटि के कण हैं, इनमें या तो भार नाम की सत्ता है ही नहीं या है भी तो नाम मात्र के लिये, किंतु इनकी गति प्रकाश की गति से भी बहुत अधिक होती है और

अब यह माना जाने लगा है कि जिस दिन इस वर्ग के कणों की खोज संभव हो गई उस दिन सारा ब्रह्मांड नंगी आँखों से दिखाई देने वाला एक नन्हा-सा क्षेत्र मात्र रह जायेगा। अर्थात् उस दिन मानवीय चेतना का अस्तित्व अत्यधिक विराट् हो जायेगा।

इस परिकल्पना के कुछ ठोस आधार हैं। इलेक्ट्रॉन और पाजिट्रॉन जो कि टॉर्डियान किस्म के परमाण्विक कण हैं, परस्पर मिलने पर गामा किरणें पैदा करते हैं। इन किरणों में प्रकाश की गति होती है, अतएव वे "लक्सॉन" वर्ग में आ जाती हैं। अब यदि "लक्सॉन" के घटक न्यूट्रिनों व ग्रेवीटोन आदि मिलकर कोई नई रचना प्रस्तुत करते हैं तो वह निःसंदेह "टेकियॉन" वर्ग का तत्त्व होगा और उसे एक ब्रह्मांड से दूसरे ब्रह्मांड के छोर तक पहुँचने में कुछ सेकंड ही लगेंगे. जबकि प्रकाश कणों को वहाँ तक पहुँचने में शताब्दियाँ लग जाती हैं।

परमाणु के भीतर के इन कणों से विनिर्मित सृष्टि बहुत महत्त्वपूर्ण तथा एक स्वतंत्र भूखंड ही प्रतीत होता है, जिसमें नाभिक सूर्य की तरह चमकता है। इलेक्ट्रॉन तारों की तरह चक्कर लगाते हैं, न्यूट्रॉन और प्रोटॉनों में पहाड़, नदी, नद, वृक्ष, वनस्पति आदि के अद्‌भुत अनोखे दृश्य दिखाई देते हैं। यह तो रही बात दृश्य की।

परमाणु अपने आप में अंतिम लघुता नहीं है। उससे भी सूक्ष्त तत्त्व उसके अंदर बैठे हैं और वह परमाणु की तुलना में इतने छोटे हैं जितनी सौर मंडल की तुलना में पृथ्वी। सन् १६११ की बात है, अर्नेस्ट रदर फोर्ड नामक एक अंग्रेज वैज्ञानिक एक प्रयोग कर रहे थे, सीसे की बनी हुई एक प्रकार की बंदूक की नली में उन्होंने थोड़ी सी रेडियम धातु रखी। सामने एक पर्दा लगाकर उन्होंने बीच में शुद्ध सोने का एक पत्तर लगा दिया। यह "पत्तर"—बहुत पतला था, तो भी परमाणुओं की सघनता तो थी ही, उस पर रेडियम के परमाणुओं ने गोलियों की तरह बौछार की।

ध्यान से देखने पर पता चला कि कुछ परमाणु उस पत्तर को भी पार कर गये हैं और उनकी आभा सामने पर्दे पर पड़ रही है, यह सीधे मार्ग से कुछ हटी हुई थी।

विचार करने से मनुष्य समुद्र के रहस्य को भी ढूँढ़ लेता है, रदर फोर्ड ने सोचा यदि सोने के परमाणु ठोस होते तो रेडियम के परमाणु उसे वेधकर पार नहीं जा सकते थे। स्पष्ट था कि परमाणु के भीतर भी रिक्तता थी, पोलापन था, उस पोलेपन ने ही रेडियम परमाणुओं को आगे बढ़ने दिया, पर उसका संपूर्ण भाग ही पोला नहीं था, क्योंकि कई बार रेडियम के परमाणु इस तरह छितर जाते थे, मानों सोने के परमाणुओं के भीतर कोई और भी सूक्ष्मतम वस्तु बैठी हुई हो और वह बंदूक से आने वाले रेडियम परमाणुओं को भी तोड़-फोड़ डालती है। उसे रदर फोर्ड ने पहली बार परमाणु का मध्य नाभिक या केंद्रक (न्यूक्लियस) नाम दिया। उसके बाद से नाभिक पर खोजें पर खोजें होती जा रही हैं, पर इस सूक्ष्मतम तत्त्व के बारे में आज तक पूर्ण रूप से जानकारी नहीं प्राप्त की जा सकी, पर जो कुछ समझ में आया उसने भारतीय तत्त्व दर्शन की इस मान्यता को बड़ा बल दिया कि आत्मा एक सर्वव्यापी चेतन तत्त्व है, संसार में जो कुछ भी है वह सब आत्मा में ही है।

परमाणु जितना छोटा होता है, उससे भी १०००००००००००वाँ भाग छोटा नाभिक होता है। परमाणु जितना रहस्यपूर्ण है, नाभिक उससे भी अधिक रहस्यपूर्ण है। उसमें नियंत्रण भी है और जीवन की संपूर्ण चेतना भी। नाभिक ही सच पूछा जाये तो परमाणु की प्रत्येक गतिविधि का अधिष्ठाता है। उसी प्रकार जीव का अधिष्ठाता आत्मा है, जब तक जीव उसे प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे शांति नहीं मिलती।

यह तथ्य पढ़ते समय भारतीय तत्त्वदर्शन के यह विवेचन याद आ जाते हैं—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेय इति चाहापरा श्रुतिः।।

—पञ्चदशी। चित्रदीप प्रकरण। ८१

अर्थात्—एक बाल के अग्र भाग के जो सौ भाग करें, उनमें से एक भाग के सौवें भाग की कल्पना करो, तो उतना अणु एक जीव का स्वरूप है, ऐसा श्रुति कहती है।

तस्मादात्मा महानेव नैवाणुर्नापि मध्यमः।
आकाशवत्सर्वगतो निरंशः श्रुतिसंमतः।।

—पञ्चदशी। चित्रदीप। ८६

अर्थात्—न अणु है न मध्यम है। आत्मा विराट् और आकाश के समान—(१) सर्वव्यापी (२) क्रियारहित (३) सर्वगत (४) नित्य कलायुक्त है।

परमाणु विज्ञान ने भारतीय दर्शन की इन संपूर्ण मान्यताओं को सिद्ध कर दिया है। भले ही आज के वैज्ञानिक अभी तक जड़ और चेतन के अंतर को न समझ पाये हों। परमाणुओं की चेतना, जड़ पदार्थों से भिन्न गुणों वाली हैं। उपनिषद्कार लिखते हैं—

एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा श्रोता घ्राता
रसयिता मन्ता बोद्धाकर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।।

—प्रश्नो० ४। ६

अर्थात्—देखने वाला, छूने वाला, सुनने वाला, सूँघने वाला, स्वाद चखने वाला, मनन करने वाला, कार्य करने वाला और जाननेवाला ही विज्ञानमय आत्मा है।

नाभिक तत्त्व को आत्मा की प्रतिकृति, जीवन का सूक्ष्म कण—कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। नाभिक प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन दो प्रकार के कणों से बना हुआ होता है। उसके किनारे इलेक्ट्रॉन चक्कर काटते हैं। प्रोटॉन एक प्रकार की धन विद्युत् आवेश रहित और इलेक्ट्रॉन में जो इन दोनों की तुलना से १८००

गुना हलका होता है ऋण विद्युत् आवेश होता है। इसे आत्मा से भटका हुआ जीव कह सकते हैं। "वैशेषिकदर्शन" में आत्मा को शांत, धीर और पूर्ण शक्ति के रूप में भी माना है और पदार्थ के रूप में भी। दोनों विसंगतियाँ नाभिक में मूर्तिमान् हैं। नाभिक में प्रोटॉन कण होते हैं, इनमें भार नहीं होता, पर न्यूट्रॉन में भार होता है, वही सारे परमाणु के भार के बराबर होता है। नाभिक में दोनों का ही अस्तित्व समान है। "इलेक्ट्रॉन" जीव है और वे तब तक चैन से नहीं बैठ पाते जब तक अक्रियाशील गैसों की अर्थात् मानसिक या आत्मिक द्वंद्व की स्थिति से मुक्ति नहीं पा लेते।

नाभिक के किनारे इलेक्ट्रॉन कई कक्षाओं में घूमते हैं। प्रत्येक कक्षा (ऑरबिट) में २ एन^2 इलेक्ट्रॉन हो सकते हैं, एन = कक्षा की संख्या अर्थात् प्रथम कक्षा में २, दूसरे में ८, तीसरे में १८ इलेक्ट्रॉन होंगे। यह कहना चाहिये, जो जितना अधिक उलझ गया है वह उतना ही दुःखी है, पर अंतिम कक्षा में, प्रत्येक अवस्था में, किसी भी द्रव्य में, अधिक से अधिक ८ ही इलेक्ट्रॉन होंगे। यह इस बात के परिचायक हैं कि प्रत्येक जीवन का अंतिम लक्ष्य एक ही सिद्धांत से बँधा हुआ है कि उसे आत्मतत्त्व की खोज करनी चाहिये। परमाणु की सारी हलचल अपने आपको अक्रियाशील बनाने की है, अक्रियाशील गैसें अर्थात् हीलियम, नियोन, ऑर्गन, क्रिप्टन, जीनान, रैडन आदि। जीव की सारी हलचल पूर्णता प्राप्त करने की है, पर जब तक हम त्याग करना नहीं सीखते, वह लक्ष्य मिलता नहीं। यह तथ्य भी हमें परमाणु से ही सीखने को मिलता है। उदाहरण के लिये नमक, सोडियम और क्लोरीन से मिलकर बनता है। सोडियम की बाहरी कक्षा में १ इलेक्ट्रॉन को नियोन की स्थिति में पहुँचाया जाता है। 'क्लोरीन' की बाहरी कक्षा में ७ इलेक्ट्रॉन थे, एक की आवश्यकता थी, वह सोडियम ने पूरी कर दी, तो जैसे ही उसके इलेक्ट्रॉन ८ हो गये वह भी ऑर्गन नामक अक्रियाशील गैस की स्थिति में पहुँच जाता है।

आपसी क्षमताओं का आदान-प्रदान कर आत्म-विस्तार की यह प्रक्रिया ही आत्म-कल्याण का सच्चा राजमार्ग है।

आत्मा बड़ी विराट् है, यह ऊपर कहा गया है। उसे जानने के लिए परमाणु की तुलना सौर मंडल से करनी पड़ेगी। वस्तुतः परमाणु में सूर्य और उसका विस्तार ही प्रतिभासित है। सूर्य अक्रियाशील गैसों का पुंज है। नाभिक के रूप में परमाणु में वही प्राण भरता है। इलेक्ट्रोन्स और कुछ नहीं हर तत्त्व में नवग्रहों का प्रभाव है। पदार्थ की रासायनिक रचना के अनुरूप वे मनुष्य को भी प्रभावित करते रहते हैं, पर यह तभी तक जब तक हमारी मानसिक और बौद्धिक चेतना की खोज नहीं करती, उसमें विलीन नहीं हो जाती। जीव रूपी इलेक्ट्रॉन जिस दिन नाभिक रूप आत्मा में विलीन हो जाता है उस दिन उसकी क्षमता सूर्य के समान प्रत्येक अणु में व्याप्त तेजस्वी और प्रखर हो जाती है।

सर्गाणु-कर्षाणु रहस्य ही रहस्य

अब इलेक्ट्रॉन के भीतर इलेक्ट्रॉन और नाभिक (न्यूक्लियस) के भीतर अनेक नाभिकों (न्यूक्लिआई) की संख्या भी निकलती चली आ रही है। हमारे ऋषि-ग्रंथों में इन्हें 'सर्गाणु' तथा 'कर्षाणु' शब्दों से संबोधित किया गया है। विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं की इस सूक्ष्म शक्ति को देवियों की शक्ति कहा गया है। यों सामान्यतौर से तत्त्व पाँच ही माने गये हैं, किंतु 'वेद निदर्शन विद्या' में यह स्पष्ट उल्लेख है कि सोना, चाँदी, लोहा, अभ्रक आदि ठोस पृथ्वी के ही विभिन्न रूपांतर हैं। इसी प्रकार वायु के ४९ भेद मिलते हैं। अग्नियों और प्रकाश के भी भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन मिलता है। शक्ति साहित्य में पदार्थ शक्तियों के सैकड़ों नाम मिलते हैं, हर शक्ति का एक स्वामी देवता माना गया है और उसे शक्तिमान् शब्द से संबोधित किया गया है। अब पदार्थ के साथ जिस प्रतिपदार्थ की कल्पना की गई है, वह प्रत्येक अणु में प्रकृति के साथ पुरुष की उपस्थिति का ही बोधक है।

१६३० में इसी विषय पर प्रसिद्ध फ्रांसीसी वैज्ञानिक पाल एट्रियेन मॉरिस डीराक ने इस तरह के कणों की उपस्थिति का उल्लेख किया और उन्हें प्रतितत्त्व (एंटीएलिमेंट) का नाम दिया गया। डीराक को १६३३ में इसी विषय पर नोबुल पुरस्कार दिया गया। उसके बाद एंटीइलेक्ट्रॉन, एंटीप्रोटॉन सामने आये। सबसे हलचल वाली खोज मार्च १६६५ में अमेरिका की ब्रूक हेवेन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में हुई, जिसमें प्रत्येक तत्त्व का उलटा अतत्त्व होना चाहिए। कोलंबिया विश्व विद्यालय के वैज्ञानिकों ने 'एंटी ड्यूटिरियम' की खोज की, जो सामान्य हाइड्रोजन के गुणों से विपरीत था और यह निश्चय हो गया कि संसार में प्रोटॉनों से भी भारी नाभिक कण विद्यमान हैं और यहीं से एक नई कल्पना का उदय हुआ कि संसार में प्रतिब्रह्मांड नाम की भी कोई सत्ता होनी चाहिए।

ब्रह्म कहते हैं—ईश्वर को, अंड कहते हैं—जिसमें निवास हो सके, लोक आदि। सारे संसार को ही ब्रह्मांड कहते हैं और भारतीय दर्शन में एक ही ईश्वर की कल्पना की गई है। ऋषियों ने गाया है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पवत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः।।

—ऋग्वेद १०।८१।३

एक ही देव (परमात्मा) सब विश्व को उत्पन्न करता, देखता, चलाता है। उसकी शक्ति सर्वत्र समाई हुई है। वही परमशक्तिमान् और सबको कर्मानुसार फल देने वाला है।

अंग्रेजी का 'यूनिवर्स' शब्द भी सारे विश्व की एकता का प्रतीक है। सृष्टि का कोई भी स्थान पदार्थरहित नहीं है। आकाश में भी गैसें हैं, जहाँ बिल्कुल हवा नहीं है, वहाँ विकिरण या प्रकाश के कण और ऊर्जा विद्यमान हैं। प्रकाश भी एक विद्युत् चुम्बकीय तत्त्व है। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि वह एक वर्गमील क्षेत्र पर प्रति मिनट आधी छटांक मात्रा में सूर्य से गिरता रहता है अर्थात् एक

वर्गमील स्थान में जो भी प्राकृतिक हलचल हो रही है, उसका मूल कारण यह आधी छटांक विद्युत् चुंबकीय तत्त्व ही होता है।

जिस प्रकार कोई स्थान पदार्थरहित नहीं है और प्रतिकण की उपस्थिति भी सिद्ध हो गई, जो कि स्थूल कण की चेतना से विपरीत गुण वाला होता है, तो यह एक मानने वाली बात हुई कि सारी सृष्टि में व्यापक प्रतिब्रह्मांड तत्त्व वही ईश्वर होना चाहिए जिसे कण-कण में विद्यमान, कर्माध्यक्ष, विचार, ज्ञान, मनन आदि गुणों वाला तथा गुणों से भी अतीत कहा गया है।

मनुष्य शरीर जिन जीवित कोशों (सेल्स) से बना है, उसमें आधा भाग ऊपर बताये गये भौतिक तत्त्व होते हैं। उनकी अपनी विविधता कैसी भी हो, पर यह निश्चित है कि कोश में नाभिक को छोड़कर हर स्कूल पदार्थ कण कोई न कोई तत्त्व होता है। उनके अपने-अपने परमाणु, अपने-अपने इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, पाजिट्रॉन, प्रतिइलेक्ट्रॉन तथा नाभिक भी होंगे। पदार्थ ही ब्रह्मांड की रचना करता है। इस प्रकार योग वशिष्ठ का यह कहना है कि प्रत्येक लोक के अंदर अनेक लोक और उनके ब्रह्मा (शासनकर्ता) विद्यमान् हैं, गलत नहीं है। जीव अपनी वासना के अनुसार जिस पदार्थ की कल्पना करता है उसी प्रकार के तत्त्व या गुण वाले लोक में चला जाता है। पर जिस प्रकार से मनुष्य के कोश का मूल 'नाभिक' ही अपनी चेतना का विस्तार 'साइटोप्लाज्मा' के हर तत्त्व के नाभिक में करता है, उसी प्रकार इस सारी सृष्टि में हो रही हलचल का एक केंद्रक या नाभिक होना चाहिए। चेतन गुणों के कारण उसे ईश्वर नाम दिया गया हो तो इसे भारतीय तत्त्वदर्शियों की अति-कल्पना न मानकर आज के स्थूल और भौतिक विज्ञान जैसा चेतना का विज्ञान ही मानना चाहिए और जिस प्रकार आज भौतिक विज्ञान की उपलब्धियाँ जीवन के सीमित क्षेत्र को लाभान्वित कर रही हैं, जीवन के अनंत क्षेत्र के लाभ इस महान् अध्यात्म विज्ञान द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए।

परमाणु एक सजीव ब्रह्मांड है, उसमें झाँककर देखा गया तो सूर्य की दमक, सितारों-सा परिभ्रमण और आकाश जैसा शून्य स्थान मिला। परमाणु की सारी गति का केंद्र बिंदु उसका तेजस्वी नाभिक ही होता है।

सन् १८९६ की बात है। एक दिन फ्रांसीसी भौतिक विज्ञानी हेनरी बेकरल यूरेनियम पर प्रयोग कर रहे थे, तब उन्हें पता चला कि यह यौगिक अपने भीतर अपने आप ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। यह ऊर्जा पदार्थ से फूटती रहती है। मैडम क्यूरी ने इसी का नाम रेडियो सक्रियता बताया था। इसी गुण के कारण पदार्थ टूटते-फूटते, गलते और नष्ट होते रहते हैं। यह अवधि बहुत लंबी होती है, इसलिये स्पष्ट दिखाई नहीं देती, पर प्रकृति में इस तरह की सक्रियता सर्वत्र है। थोरियम का अर्द्ध जीवन १४०००,०००,००० वर्ष है अर्थात् इतने वर्षों में उसकी मात्रा आधी रह जाती है, आधी विकिरण से नष्ट हो जाती है। पृथ्वी के लोग भी इस तरह का विकिरण किया करते हैं। प्रति वर्ष मनुष्य जाति ६०००००००००००००००० फुट पौंड ऊर्जा आकाश में भेजती रहती है, जबकि हमारे जीवन को, अपने समस्त ब्रह्मांड को गतिशील रखने के लिये सूर्य प्रति सेकंड चार सौ सेक्टींलियन अर्थात् दस अरब इक्कीस करोड़ किलोवाट शक्ति अपने सारे मंडल को बिखेरता और उसे गतिशील रखता है। इस आदान-प्रदान क्रिया पर सारा संसार चल रहा है। यदि सूर्य यह शक्ति देना बंद कर दे तो सौर मंडल का हर कण, हर शरीर निश्चेष्ट होकर नष्ट हो जायगा। सौर मंडलों की रचना व विध्वंस ऐसे ही हुआ करता है।

थोरियम के परमाणु से यदि उसके नाभिक को उसी के इलेक्ट्रॉन से चोट कराई जाये तो जो रेडियो-ऊर्जा १४०००,००००० × २ (उसकी पूरी मात्रा समाप्त होने तक) वर्ष में समाप्त होती होगी, वह एक क्षण में समाप्त हो जायेगी। यह शक्ति इतनी बड़ी होगी कि वह लंदन जैसे तीन महानगरों को एक सेकेंड में

नष्ट कर दे। परमाणु की इस महाशक्ति की महाशक्ति से उसी प्रकार तुलना की जा सकती है जिस प्रकार परमाणु की रचना से सौर मंडल की रचना की तुलना की जाती है। वस्तुतः परमाणु, सूर्य और समस्त ब्रह्मांड के समान त्रिक हैं। जो परमाणु में है वही सौर मंडल में है। जिस प्रकार परमाणु अपने नाभिक के बिना नहीं रह सकता, सौर मंडल सूर्य के बिना, ब्रह्मांड भी एक अनंत सर्वव्यापी शक्ति के बिना रह नहीं सकता। प्रकृति और ब्रह्म की एकता का रहस्य भी यही है। जब तक नाभिक, न्यूटॉन एक हैं, जब तक दोनों में संघात नहीं होता, सृष्टि परंपरा परमाणु की तरह स्थिर रहेगी, जिस दिन संघात हुआ उसी दिन सारी सृष्टि शक्ति रूप में 'बहुस्याम एकोभवामि' की स्थिति में चली जायेगी।

शरीर एक परिपूर्ण ब्रह्मांड है। प्राकृतिक परमाणु (जो साइटोप्लाज्मा निर्माण करते हैं) उसके लोक की रचना करते हैं और नाभिक मिलकर एक चेतना के रूप में उसे गतिशील रखते हैं। सूर्य परमाणु प्रक्रिया का विराट् रूप है, इसलिये वही दृश्य जगत् की आत्मा है, चेतना है, नियामक है, स्रष्टा है। उसी प्रकार सारी सृष्टि का एक अद्वितीय स्रष्टा और नियामक भी है, पर वह इतना विराट् है कि उसे एक दृष्टि में नहीं देखा जा सकता। उसे देखने, समझने और पाने के लिये हमें परमाणु की चेतना में प्रवेश करना पड़ेगा, बिंदु साधना का सहारा लेना पड़ेगा, अपनी चेतना को इतना सूक्ष्म बनाना पड़ेगा कि आवश्यकता पड़े तो वह काल, ब्रह्मांड तथा गतिरहित परमाणु की नाभि सत्ता में ध्यानस्थ व केंद्रित हो सके। उसी अवस्था पर पहुँचने से आत्मा को परमात्मा की स्पष्ट अनुभूति होती है। नियामक शक्तियों के जानने का और कोई उपाय नहीं है। शरीर में वह सारी क्षमतायें एकाकार हैं, चाहें तो इसका उपयोग कर परमाणु की सत्ता से ब्रह्म तक की प्राप्ति इसी में कर लें।

स्वरूप जितना महान् आधार उतना ही सूक्ष्म

कलकत्ते में एक ऐसा वट-वृक्ष (फाइकस बेंगालेन्सिज) पाया जाता है, जिसकी ऊपरी छतरी का व्यास २००० गज से भी अधिक है। बरगद की डालियों से भी जड़ें (बरोहे) निकल-निकल कर पृथ्वी में धँस जाते और ऊपरी फैलाव को साधे रहते हैं। इस वट-वृक्ष में भी हजारों जड़ें निकलकर जमीन में धँस गई हैं, उससे वृक्ष की सुरक्षा, शक्ति तथा शोभा और भी अधिक बढ़ गई है। हजारों व्यक्ति, हजारों पक्षी उसकी छाया में आश्रय और आजीविका प्राप्त करते रहते हैं। वृक्ष का इतना भारी घेरा एक प्रकार का आश्चर्य ही है।

उससे भी बढ़कर आश्चर्य यह है कि इतना विशाल वट-वृक्ष जिस बीज से उगा है, उसका व्यास एक सेंटीमीटर से अधिक न रहा होगा। वनस्पति विज्ञान (बॉटनी) के जानने वालों को पता होगा कि वृक्ष का संपूर्ण विकास जिस धरातल पर होता है, उसे बीज कहते हैं। बीज में ही वह सारी संभावनायें छिपी पड़ी रहती हैं, जो आगे चलकर एक दीर्घाकार वृक्ष के रूप में दिखाई देने लगती हैं। बीज की बाह्य त्वचा (एपिडर्मिस) के भीतर अनेक परतें होती हैं, उन्हें वल्कुत (कॉर्टेक्स) पतली भित्तियों वाले कोषों (पैरेन्शाइटगस सेल्स) से बने होते हैं। बीज को आड़ा काटा जाय तो वह कोष गोल दिखाई देते हैं। वल्कुत की अंतिम परत को अंतस्त्वचा (एंडोडर्मिस) कहते हैं। इसके कोष (सेल्स) आयताकार (रेक्टैंग्यूलर) होते हैं। उनकी आड़ी दीवालों पर एक विशेष प्रकार की मोटाई (थिकनेस) होती है। पतले भित्तियों वाले कोषों की एक परत अंतस्त्वचा (एंडोडर्मिस) के भीतर स्थित होती है, इसे परिरंभ (पेरीसाइकिल) कहते हैं। जड़ की शाखायें इसी भाग से निकलती

हैं। यहीं से कुछ कोष निकलकर बढ़ने के लिये स्थान बना लेते हैं और कॉर्टेक्स को काटते हुए जड़ों के रूप में फूट पड़ते हैं।

जिस क्रिया में संवहन ऊतक (कैरोइंग टिसूज) का काम जाइलम और फाइलम नाम के तत्त्व करते हैं। ये दोनों बीज के मज्जा (पिथ) को घेरे रहते हैं। किसी वृक्ष के बीज की यह मज्जा (पिथ) की प्रेरणा ही ऊपर तने और नीचे जड़ के रूप में फूटती है। जड़ के इस क्रियाशील भाग को सूक्ष्मदर्शी से देखें तो बिना बढ़े हुए वृक्ष का आकार-प्रकार दिखाई दे जाता है। एक विलक्षण संसार उसमें दिखाई दे जाता है। यह आश्चर्य ही है कि मज्जा (पिथ) का सर्वेक्षण करके यह बताया जा सकता है कि वृक्ष की जड़ें इतनी होंगी, इतनी मोटाई लेकर इस गहराई में अमुक-अमुक दिशा को बढ़ेंगी, इसी प्रकार तना कितना मोटा, कितनी शाखों वाला, किधर को मुड़ा, डालियों और कितने पत्तों वाला होगा ? इस सबका पूर्णाभास इस हिस्से के सूक्ष्म दर्शन द्वारा किया जा सकता है। प्रश्न उन पत्तों और कोषों का नहीं, जो विकास की चेष्टायें करती हैं। सूझने वाली बात वह अंतःचेतना है, जो आत्म-प्रेरणा से विकसित होती और अपने आपको बढ़ाकर एक भरे-पूरे वृक्ष के रूप में परिणत कर देती है। एक पूरे वृक्ष का नक्शा एक बीज में भरा है, यह पढ़कर लोग आश्चर्य ही करेंगे।

इतना विशाल वट वृक्ष जिस बीज से अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित और बड़ा हुआ, वह आधे सेंटीमीटर व्यास से भी छोटा घटक रहा होगा। उस बीज की चेतना ने जब विस्तार करना प्रारंभ किया तो तना, तने से डालें, डालों से पत्ते, फल, फूल, जड़ें आदि बढ़ते चले गये।

मनुष्य-शरीर की प्रवृत्ति और विकास-प्रक्रिया भी ठीक ऐसी ही है। वीर्य के एक छोटे-से-छोटे कोष (स्पर्म) को स्त्री के प्रजनन कोष ने धारण किया था। पीछे यही कोष जिसमें मनुष्य स्त्री या

पुरुष के शरीर की सारी संभावनायें-आकृति-प्रकृति, रंग-रूप, ऊँचाई, नाक-नक्शा आदि सब कुछ विद्यमान् था—उसने जब बढ़ना प्रारंभ किया तो यह अंतरिक्ष की अनंत शक्तियों को खींच-खींचकर शरीर रूप में विकसित होता चला गया। एक सेंटीमीटर स्थान में कई अरब कोष आ सकते थे, जो उसी सूक्ष्मतम कोष से ५ फुट ६ इंच का मोटा शरीर दिखाई देने लगता है।

गर्भ के भीतर तक तो यह लघुता याद रहती है, किंतु बाहर हवा लगते ही जीवन का मूलभूत आधार भूल जाता है और मनुष्य अपने आप को स्थूल पदार्थों का पिंड मात्र मानकर मनुष्य जीवन जैसी बहुमूल्य ईश्वरीय विरासत को गँवा बैठता है। हम यदि छोटे-से-छोटे अणु में भी जीवन की अनुभूति कर सके होते, तो जन-चेतना के प्रति हमारा दृष्टिकोण आज की अपेक्षा कुछ भिन्न ही होता। भारतीय आचार्यों ने इस गहराई को अनुभव किया था, इसलिये उनका अधिकांश समय ध्यान, धारणा, जप, तप, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि साधनाओं में लगा था। उन्होंने प्रकाश के एक परमाणु में अपनी चेतना स्थिर कर संसार के रहस्यों को उसी तरह करतलगत किया था, जिस प्रकार मज्जा (पिथ) में ध्यान जमाने से वृक्ष की भूत-भविष्य की कल्पनायें साकार हो उठती हैं।

शरीर जिन कोषों से बनता है, उसमें चेतन परमाणु ही नहीं होते, वरन् दृश्य-जगत् में दिखाई देने वाली प्रकृति का भी उसमें विकास होता है। इससे मनुष्य-शरीर की क्षमता और मूल्य और भी बढ़ गया है। द्रव, गैस और ठोस—जल, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन, सिल्वर, सोना, लोहा, फॉस्फोरस आदि—जो कुछ भी पृथ्वी में है और जो कुछ पृथ्वी में नहीं है, अन्य ग्रह-नक्षत्रों में है, वह सब भी—स्थूल और सूक्ष्म रूप से शरीर में है। जिस तरह वृक्ष में कहीं तने, कहीं पत्ते, कहीं फल एक व्यापक विस्तार था, शरीर के

विभिन्न क्षेत्रों में उसी प्रकार विभिन्न लोक और लोकों की शक्तियाँ विद्यमान देखकर ही शास्त्रकार ने कहा था—**"यत्पिण्डे तत्ब्रह्मांडे"**। ब्रह्मांड की संपूर्ण शक्तियाँ मनुष्य शरीर में विद्यमान हैं। सूर्य, चंद्रमा, बुध, बृहस्पति, उत्तरायण, दक्षिणायन मार्ग, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, विद्युत्, चुंबकत्व, गुरुत्वाकर्षण यह सब शरीर में हैं। यजुर्वेद का कथन है—

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँश अकल्पयन्।।

—३१। १३

अर्थात् द्यौ सिर, वायु ही प्राण, अंतरिक्ष नाभि, दिशा कान और भूमि पैर हैं—इस तरह यह विराट् जगत् मेरे भीतर समाया हुआ है।

ईसाई धर्म की पुस्तक बाइबल की व्याख्या करते हुए पैरासेल्सस लिखते हैं कि—"मनुष्य-शरीर को इच्छाओं का सजा हुआ वाद्ययंत्र कहना चाहिये, जिसमें कि आत्मा की झंकार सबसे मधुर सुनाई देती है। इच्छायें आकाश में स्थिर नक्षत्रों (देव-शक्तियों) के बीज-कोष ही हैं। यह बीज शरीर के कुछ महत्त्वपूर्ण स्थानों में रहते हैं। उनकी आणविक संरचना और उन नक्षत्रों की आणविक संरचना में विलक्षण साम्य होता है।"

पैरासेल्सस आगे लिखते हैं—"शरीर की रचना (नक्षत्र गति) के संरक्षण और निर्देशन में होती है। उत्पत्ति के तीसरे दिन चंद्रमा ने बुद्धि और तुला ने व्यक्तित्व को प्रभावित किया। शरीर में तन्मात्रायें दूसरे दिन ही आ गईं थी, जिनकी उत्पत्ति सूर्य-शक्ति से हुई। हृदय पर लियो (चंद्रमा) का अधिकार होता है और वह आत्मिक शांति और सभ्यता प्रदान करता है। शरीर के दूसरे सूक्ष्म अंगों को सेजीटेरियस, इगो प्रभावित करते हैं।" मनुष्य-शरीर में विद्यमान यही चेतना-कोष ही जीवन की गतिविधियों का निर्माण करते हैं। इस तरह बाइबिल और बाइबिल के पंडित भी इस तथ्य

से परिचित थे कि शरीर का स्थूल भाग, जहाँ पार्थिव अणुओं से बना है, वहाँ उसकी चेतना का विस्तृत ढाँचा ब्रह्मांड की शक्तियों और नक्षत्रों से बना है, उसका स्वरूप चाहे कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो ?

योग ग्रंथों में वर्णित चमत्कार शरीर की इन सूक्ष्म और अलौकिक शक्तियों का विकास मात्र है। सब कुछ हमारे शरीर में है, यदि हम उसे खोजने का प्रयत्न करें तो बाह्य संपदायें न होने पर भी अतुल शक्तियों के स्वामी बन सकते हैं। बहुमुखी शक्तियों के स्रोत हमारे भीतर भरे पड़े हैं, उनका विकास जीवन की अनेक धाराओं में कलकत्ते के वट-वृक्ष की भाँति किया जा सकता है, उससे अपना ही नहीं, हजारों औरों को भी आश्रय, संरक्षण और जीवन प्रदान किया जा सकता है।

योग-ग्रंथों में वर्णित चमत्कार शरीर की उन सूक्ष्म और अलौकिक शक्तियों का विकास मात्र है। सब कुछ हमारे शरीर के भीतर ही है, यह बात और है कि वह हमें दिखाई नहीं देता है। संसार के बहुत से पदार्थ और विशेषतायें नहीं दिखाई देतीं, बहुत से ही नहीं अधिकांश-तत्त्व अदृष्ट ही रहते हैं। केवल वही पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, जो स्थूल होते हैं, उनके भीतर काम करने वाली सत्ता जो सूक्ष्म में सन्निहित है न तो आँख से दिखाई देती है और न प्रत्यक्ष उपकरणों से ही समझ में आती है।

जो सशक्त है वह सूक्ष्म है

जो सशक्त है वह सूक्ष्म है, स्थूल तो उसका आवरण है। काया को हम देख पाते हैं और मनुष्य को उसके कलेवर के रूप में ही पहचानते हैं, पर असली चेतना तो प्राण है, जो न तो दिखाई पड़ता है और न उसका स्तर सहज ही समझ में आता है। जो सूक्ष्म है वही शक्ति का स्रोत है, उसे समझने और उपयोग करने के लिये अधिक गंभीर और वेधक दृष्टि चाहिए। उसका उपयोग

करने तथा उससे लाभान्वित होने के लिये तो और भी अधिक पैनी दृष्टि चाहिए।

छोटे से बीज में वृक्ष का विशालकाय कलेवर छिपा रहता है, एक शुक्राणु में मनुष्य का सारा ढाँचा पूरी तरह सन्निहित है, अणु की नगण्य सत्ता में एक पूरे सौर मंडल की प्रक्रिया पूरी तरह विद्यमान है। यह सब जानते हुए भी हम 'सूक्ष्मता की शक्ति' से एक प्रकार अपरिचित ही बने हुए हैं।

चिकित्सा पद्धतियों में से सूक्ष्मता पर अवलंबित एक महत्त्वपूर्ण पद्धति होम्योपैथी की है। उसमें विष को विष से मारने की, काँटे से काँटे निकालने की, शठे शाठ्यं समाचरेत् की नीति की मान्यता दी गई है, साथ ही यह भी प्रतिपादन किया गया है कि वस्तु के स्थूल कलेवर में जितनी सामर्थ्य है, उसकी अपेक्षा उसके अंतराल में सन्निहित सूक्ष्म शक्ति की गरिमा अत्यधिक है। चिकित्सा में काम आने वाली औषधियों के बारे में भी यही बात है, उन्हें मोटे रूप में सेवन किया जाए तो स्वल्प गुण दिखावेंगी, किंतु यदि उन्हें अति सूक्ष्म बनाकर सेवन किया जाए तो उसी पदार्थ की सामर्थ्य अनेक गुनी बढ़ जायेगी और अपना चमत्कारी प्रभाव प्रस्तुत करेगी। होम्योपैथी को एक प्रकार से सूक्ष्मता की शक्ति का प्रतिपादन ही कहना चाहिए।

अर्गेनन सूत्र २६६, २७० में होम्योपैथी चिकित्सा के आविष्कारक डॉ० हैनीमैन ने बताया है कि होम्योपैथी औषधियों के निर्माण का सिद्धांत यह है कि उनके अंदर जो अदृश्य सूक्ष्म शक्ति है, उसे जगाया जायेगा ताकि वह रोग से ग्रसित जीवनी शक्ति (वाइटैलिटी) को रोग मुक्त करने में सहायक हो सके।

होम्योपैथिक औषधियों की सूक्ष्म शक्ति शारीरिक एवं मानसिक रोगों के निवारण में विशेष प्रभावी सिद्ध हुई है। होम्योपैथी के डॉक्टरों ने विभिन्न प्रकार के खनिजों, वनस्पतियों से

बनाई गई औषधियों का प्रयोग मनुष्य के ऊपर किया। अध्ययन करने पर इस तथ्य का उद्‌घाटन हुआ कि दवाओं की कोई स्थूल प्रतिक्रिया शरीर एवं मन पर नहीं होती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला है कि रोगों के निवारण में औषधियों के सूक्ष्म संस्कार ही कारण होते हैं।

होम्योपैथी दवाओं का चयन मानसिक लक्षणों के आधार पर किया जाता है; उदाहरणार्थ—ऐनाकार्डियम, आरंभ मैटेलिकम प्लेटिना, पल्सेटिल्ला आदि औषधियों में स्थूल रूप से मानसिक लक्षण प्रकट करने की सामर्थ्य नहीं होती। पर जब इनके सूक्ष्म संस्कारों को जाग्रत् किया जाता है तो मानसिक रोगों में चमत्कारी प्रभाव दिखाती हैं। घोर निराशा में घिरे व्यक्ति को ऊँची पोटेन्सी की दी गई आरंभ मैटेलिकम नामक दवा विशेष लाभकारी सिद्ध होती है।

इन दवाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रयोगकर्ता उनके 'साइड इफेक्ट' से बचा रहता है। अति सूक्ष्मीकृत होने के कारण उनका हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ने पाता। जिसका कि डर एलोपैथिक दवाओं में सदा बना रहता है। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म कितना सामर्थ्यवान् है, यह होम्योपैथी की दवाओं में देखा जा सकता है। सूक्ष्मीकरण की प्रक्रिया भी कम रोचक एवं आश्चर्यजनक नहीं है। यदि 'पल्सेटिल्ला' नामक पौधे की पोटेन्सी बनानी हो तो सर्वप्रथम पौधे का एल्कोहल में 'एक्सट्रेक्ट' निकालते हैं। एक बूँद एक्सट्रेक्ट में ११ बूँद अल्कोहल मिलाकर १०० बार हिलाते हैं। यह एक पोटेन्सी हुई। इस एक पोटेन्सी की एक बूँद लेकर ११ बूँद अल्कोहल में मिलाते हैं और पुनः १०० बार हिलाते हैं। यह २ पोटेन्सी की दवा तैयार हुई। इस विधि द्वारा ३० पोटेन्सी, १०० पोटेन्सी, १००० पोटेन्सी और एक लाख पोटेन्सी तक की दवाएँ तैयार होती हैं। ये तो वे दवाएँ हैं जो बाजार में

मिलती है। इनसे ऊँची पोटेन्सी की दवाएँ भी बनायी जा सकती हैं।

इन सूक्ष्मीकृत ऊँची पोटेन्सी की दवाओं को उचित निदान द्वारा उचित मात्रा में दिए जाने पर चमत्कारी प्रभाव दिखाती हैं। बायोकेमिक दवाओं में भी पदार्थों की सूक्ष्म शक्ति का सिद्धांत ही काम करता है। शरीर में पाये जाने वाले १२ प्रकार के नमकों से इन औषधियों का निर्माण होता है। एक व्यक्ति सामान्यतः १० से १२ ग्राम नमक प्रतिदिन खाता है, जो पसीने, पेशाब आदि के रास्ते बाहर निकल जाता है। स्थूल रूप में लिया गया यह नमक कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखा पाता। मात्र स्वाद की पूर्ति करता हुआ यों ही बाहर निकल जाता है। जबकि इसी नमक को ठीक प्रकार 'पोटेन्टाइस' किया जाय तो एक मिलीग्राम के करोड़वें भाग में भी दुस्साध्य रोगों को ठीक करने की क्षमता आ जाती है।

आरंभ में जब डॉ० शुषलर ने अपने बायोकेमिक दवाओं के सिद्धांत का प्रतिपादन किया तो अनेकों ने उपहास किया। पर प्रयोगों की कसौटी पर कसने के उपरांत उसकी उपयोगिता को सभी ने एक स्वर से स्वीकार किया।

होम्योपैथिक एवं बायोकेमिक औषधियों से सूक्ष्म की प्रचंड शक्ति का पता लगता है। इसका एक और भी प्रमाण अणु की शक्ति से मिलता है। भौतिक शास्त्र के मूर्धन्य एवं विश्व विख्यात वैज्ञानिक एल्बर्ट आइन्स्टीन की स्पेशल थ्यौरी ऑफ रिलेटिविटी के अनुसार यदि एक मिलीग्राम फॉस्फोरस को पूर्ण रूप से ऊर्जा में परिवर्तित कर दिया जाए तो वह ऊर्जा उतनी ही होगी जितनी कि पौने चार टन फास्फोरस को हवा में जलाने से प्राप्त होगी। इस प्रचंड ऊर्जा का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। एक मिलीग्राम फॉस्फोरस के अंतराल में विशालकाय पहाड़ को भी

खंड-खंड कर देने की सामर्थ्य विद्यमान हैं, यह जानकर मस्तिष्क चकरा जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों में शक्ति का अनंत स्रोत छिपा पड़ा है। प्रकृति का जो स्थूल वैभव दिखाई पड़ता है, उसका भी कारण सूक्ष्म शक्ति ही है। सूक्ष्म ही स्थूल जगत् का आधार है। हमारी स्थूल बुद्धि इस तथ्य को नहीं समझ पाती। वह दृश्यमान स्थूल पदार्थों को ही देख पाती है। उनका मोटा मूल्यांकन करके मोटा उपयोग ही समझ पाती है। फलतः संबंधित व्यक्तियों एवं पदार्थों से हम बहुत छोटा-सा ही लाभ उठा पाते हैं। कदाचित् उनकी सूक्ष्म शक्ति को समझें और उनसे निःसृत होने वाली चेतना एवं प्रेरणा को समझें तो हर प्राणी और हर पदार्थ हमें इतना अधिक अनुदान दे सकता है कि सिद्धियों एवं विभूतियों की किसी प्रकार की कमी न रहे।

वैभव गरिमा का आधार

किसी का वैभव-बड़प्पन देखकर उसकी गरिमा का मूल्यांकन करना अवास्तविक है। गरिमा उत्कृष्टता में छिपी रहती है, क्योंकि सशक्तता उसी के साथ जुड़ी रहती है। सूक्ष्म जगत् में प्रवेश करने पर भौतिकता का कलेवर नहीं रहता, पर इससे शक्ति में कोई कमी नहीं आती, वरन् वह आवरण का भार हल्का हो जाने पर और भी अधिक संपन्न बनती जाती है।

अध्यात्म सूक्ष्मता का विज्ञान है। उसमें पदार्थ के विस्तार को नहीं—गुणों की तेजस्विता को महत्त्व दिया गया है। आंतरिक उत्कृष्टतायें आँखों से दृष्टिगोचर नहीं होतीं तो भी उनका प्रभाव कितना अधिक होता है, इसे सहज ही जाना जा सकता है। विचारवान् इसीलिए विस्तार की अपेक्षा सूक्ष्मताजन्य प्रखरता को ही महत्त्व देते हैं।

"अधिकस्य अधिकं फलम्" की उक्ति बहुत मोटी बातों में ही सही सिद्ध होती है। सूक्ष्म प्रयोजनों में स्वल्प का ही महत्त्व बढ़ता जाता है। दृश्य जगत् क्या है ? पदार्थों का समुच्चय। पदार्थ क्या हैं ? यौगिकों, तत्त्वों और परमाणुओं का समन्वय। परमाणु क्या हैं ? विद्युत् बिंदुओं का संगठन। इन विद्युत् बिंदुओं—इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉनों की भी गहराई अभी खोजी जा रही है। दृश्य जगत् वस्तुतः उन विद्युत् बिंदुओं से आरंभ होता है, जो कहने-सुनने में सरल किंतु देखने, अनुभव करने में अत्यंत छोटे कलेवर के कारण अति कठिन है।

हमारे शरीर के जीवाणु बहुत ही छोटे हैं। उनकी शोषण शक्ति भी उनके कलेवर के अनुरूप ही स्वल्प है। उनमें प्रवेश कर सकने वाले पदार्थ इतने छोटे होने चाहिए, जो इन शरीरगत जीवाणुओं, कोशाओं के भवन में आसानी से प्रवेश पा सकें। आहार में प्राकृतिक रूप से हर जीवनोपयोगी पदार्थ बहुत ही छोटे अंशों में विद्यमान रहता है, इसलिए वे पचकर शरीर में घुल मिल जाते हैं, पर यदि उन्हें सघन रूप में लिया जाए तो उनके मोटे कण चूर्ण-विचूर्ण होने में बहुत समय और श्रम लेंगे और तब कहीं कठिनाई से थोड़ी मात्रा में हजम होंगे। यही कारण है कि शाक-भाजी, अन्न, दूध में अत्यंत स्वल्प मात्रा में मिले हुए क्षार और खनिज हमारे शरीर में घुल जाते हैं, किंतु उन्हीं पदार्थों को यदि गोलियों के रूप में खाया जाए तो उनका बहुत छोटा अंश ही शरीर को मिलेगा बाकी स्थूल होने के कारण बिना पचे ही मल मार्ग से निकल जायेगा।

हाइड्रोजन परमाणु का एक इलेक्ट्रॉन अपने केंद्र के चारों ओर एक सेकंड में ६००० खरब चक्कर काटता है। परमाणु की संरचना सौरमंडल के सदृश है, उनके भीतर विद्युत् कण भयंकर गति से घूमते हैं, फिर भी उसके पेट में बड़ा सा आकाश भरा

रहता है। परमाणुओं के गर्भ में चल रही भ्रमणशीलता के कारण ही इस संसार में विभिन्न हलचलें हो रही हैं। यदि वे सब रुक जाएँ तो आधा इंच धातु का वजन तीस लाख टन हो जायगा और सर्वत्र अकल्पनीय भार भरी जड़ता दिखाई पड़ेगी।

वजन की दृष्टि से कौन वस्तु भारी और कौन हल्की है ? इस आधार पर उसकी गरिमा का मूल्यांकन नहीं हो सकता। चट्टान बहुत भारी है, किंतु उसका मूल्य हीरे के एक छोटे से टुकड़े के बराबर नहीं होता। सबसे हलका हाइड्रोजन अणु—अन्य भारी समझे जाने वाले अणुओं की तुलना में कम नहीं अधिक ही महत्व प्राप्त कर रहा है।

बड़े पदार्थ अणुओं का एक विशाल रूप होता है, इसमें कलेवर भर का विस्तार होता है। प्रत्येक कण को अपना स्वतंत्र अस्तित्व और प्रभाव प्रकट करने का अवसर नहीं मिलता। वे यदि अलग-अलग होकर अपनी मूल सत्ता को प्रकट कर सकने की स्थिति में होते हैं, तो आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार नमक का एक करोड़वाँ भाग भी अपना आश्चर्यजनक काम करता है।

आहार और चिकित्सा में सूक्ष्मता को महत्व मिलना चाहिए। इस तथ्य पर विज्ञानवेत्ता बहुत समय से प्रकाश डाल रहे हैं। सूक्ष्मता के विशेष शोधकर्ता डच विज्ञानी प्रो० डांडर ने एक बार डार्विन को लिखा था—एट्रोपिन की एक ग्रेन का लाखवाँ हिस्सा भी आँखों पर प्रभाव डालता है। इस प्रकार का डार्विन ने स्वयं का अपना अनुभव प्रो० डांडर को लिखा था—अमोनिया की १ ग्रेन का एक करोड़ चालीस लाखवाँ हिस्सा शरीर की ग्रंथियों द्वारा ग्रहण करने पर आंत्रवाहक स्नायुओं में तेज झटका मारते हुए उन्होंने देखा है।

एक पाव दूध में एक ग्रेन का छह लाखवाँ अंश जितना स्वल्प लोहा होता है, पर इतने से ही बच्चे के शरीर की लौह आवश्यकता

पूरी हो जाती है। यदि इसी लोहे को गोली या सुई के रूप में दें तो उससे वैसा पोषण प्राप्त न हो सकेगा। शरीर में क्लोरीन तो लोहे से भी कम है। उसकी आवश्यकता पूरी करने के लिए आहार या औषधि में उसी स्वल्प अनुपात से विरल अणुओं के रूप में वह तत्त्व होना चाहिये तभी कोशाओं की वह आवश्यकता पूरी हो सकेगी। लोहा या क्लोरीन बड़ी मात्रा में देकर शरीर का हित नहीं अहित ही किया जा सकता है। वह बड़ी मात्रा में हजम न होकर अनावश्यक भार डालने के बाद मल द्वार से बाहर निकल जाएगी।

पानी में हजारवें भाग के रूप में घुला दालों का ग्लूटिन हाइड्रोक्लोरिक एसिड आसानी से पच जाता है, पर जब वही अधिक मात्रा में होता है तो निरर्थक चला जाता है।

बात को और भी अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिये कि एक क्यूविक इंच के १२०००००वाँ भाग आकार का एक लाल रक्ताणु होता है। एक बूँद खून में इस तरह के प्रायः तीन लाख अणु होते हैं, वे ही खनिजों, क्षारों तथा अन्य रसायनों को अपने ऊपर लादे शरीर में ढोते फिरते हैं। इन पर कितनी हलकी और विरल वस्तु लद सकती है। इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है और खाद्य-पदार्थों में सूक्ष्मता के सिद्धांत की उपयोगिता समझी जा सकती है।

मनुष्य की स्वयं की पूर्ण सत्ता बीज रूप में कितनी छोटी होती है ? यह जानने के लिये हमें शुक्राणु के आकार पर विचार करना होगा। गर्भाधान के समय उसका आकार एक क्यूबिक मिलीमीटर का दस लाखवाँ भाग मात्र होता है। उसी के भीतर शारीरिक और मानसिक दृष्टि से एक पूर्ण मानव उकड़ू-मुकड़ू बनकर बैठा रहता है। इस सारी दुनिया में प्रायः ५ औंस रेडियम होने का अनुमान लगाया गया है; पर इतने से ही उसकी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता अगले २५ हजार वर्ष तक मजे से पूरी होती रहेगी।

मोटी बुद्धि विस्तार को देखकर ही प्रभावित होती है। उसे यह पता नहीं होता कि काया की विशालता का कोई मूल्य नहीं, जीवन तो नाप-तौल में न आ सकने वाली अकिंचन-सी चेतना का है। वह चेतना ही इतने बड़े शरीर यंत्र के अगणित कलपुर्जों का संचालन करती है और जब वह शिथिल पड़ जाती है तो शरीर लड़खड़ा जाता है और विलग हो जाने पर, वही शरीर तत्काल सड़-गलेकर नष्ट होने लग जाता है।

प्रकाश रश्मियों की लंबाई एक इंच के सोलह से तीस लाखवें हिस्से के बराबर होती है। रेडियो पर सुने जाने वाली ध्वनि-तरंगों की गति एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील की होती है, वे एक सेकंड में सारी धरती की सात परिक्रमा कर लेती हैं। शब्द और प्रकाश की तरंगों का आकार एवं प्रवाह इतना सूक्ष्म एवं गतिशील है कि उन्हें बिना सूक्ष्म यंत्रों की सहायता के हमारी इंद्रियाँ अनुभव नहीं कर सकती हैं।

इस सूक्ष्मता की चरमसीमा तक पहुँचते हैं तो उपनिषद्कार की भाषा में हम विद्युत् ब्रह्म की सीमायें छूने लगते हैं। परमाणु सत्ता के अंतर्गत काम करने वाले विद्युत् बिंदुओं की ओर ही यह संकेत है। बृहदराण्यक उपनिषद् का ऋषि ५।७।१ में कहता है—**"विद्युद्ध्येव ब्रह्म"** यह विद्युत् ब्रह्म है।

चर्म-चक्षुओं से दीख पड़ने वाले वैभव विस्तार का मूल्य बढ़ा-चढ़ाकर मानने की स्थूल बुद्धि प्रायः धोखा खाती है। गहराई से तलाश करने से पता चलता है कि महत्व विस्तार का नहीं, उसमें सन्निहित सूक्ष्म क्षमता का है। मनुष्य के धन, बल, पद, ज्ञान आदि के आधार पर नहीं, उसकी आंतरिक स्थिति को देखकर ही यह समझा जा सकता है कि वह कितना समर्थ और कितना मूल्यवान् है ?

अति विलक्षण चेतना अर्थात् सूक्ष्म की सत्ता

जीवन की सूक्ष्मतम सत्ता बड़ी विलक्षण और रहस्यपूर्ण है, अब तक ऐसी सूक्ष्म जीवन की इकाई का पता नहीं लगाया जा सका, जो अंतिम (एब्सोल्यूट) और शाश्वत (इम्मोर्टल) हो, किंतु उसका पता लगाते-लगाते वैज्ञानिकों ने जिन सूक्ष्मताओं का पता लगा लिया है, वह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है।

वैज्ञानिकों के संसार में जीवन की जिन सूक्ष्मतम इकाइयों का पता चल पाया है, उनमें से 'डायटम' सबसे छोटा होता है। किंतु इसमें भ्रमात्मक प्रक्रिया है। 'डायटम' को कुछ वैज्ञानिक जीवाणु मानते हैं, कुछ उसे वनस्पति जगत् का सबसे छोटा कोश (सेल) मानते हैं। इसके बाद सबसे सूक्ष्म इकाई विषाणु (वायरस) है, यह इतना छोटा होता है कि अब तक खोजे गये, लगभग ३०० वायरसों में से पोलियो वायरस के १०,००,००,००,००,००,००,००,००० कण केवल एक छोटी-सी पिंगपौंग की गेंद में आ जायेंगे। विषाणु इतने सक्रिय होते हैं कि १९१८ में आये इन्फ्लुएंजा में उसने थोड़े ही दिनों में दो करोड़ स्त्री-पुरुषों और बच्चों की मृत्यु के द्वार पर पहुँचा दिया। सूक्ष्मतम की प्रबलतम शक्ति का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है। कदाचित् हमने भी अपने आपको बड़ा प्रदर्शित करने की भूल न की होती और इतने लघु होते गये होते कि संसार की सबसे छोटी इकाई में आत्मसात् हो गये होते तो हमारी भी शक्ति ऐसी ही होती। उससे लाखों लोगों का हित कर सकने की स्थिति में होते।

वैज्ञानिक विषाणु (वायरस) को निर्जीव कण मानते हैं, इसकी सक्रियता तो तभी देखने में आती है, जब वह किसी प्राणी के शरीर में कोशिका (सेल) के संपर्क में आता है। जड़ हो अथवा चेतन यह वैज्ञानिक जानें, पर इतना निश्चित है कि प्रकृति या परमेश्वर को समेझने के लिये बाह्य उपकरण काम नहीं दे सकते। उनकी स्पष्ट और सही जानकारी तभी संभव है, जब हम उन्हें

अपनी मानसिक चेतना ज्ञान या अनुभूति की अत्यंत सूक्ष्म इकाई से तोलें। अभी तो वैज्ञानिकों को सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता मिल रही है, पर संभव है आगे चलकर उन्हें भी 'ध्यान प्रणाली' अपनानी पड़े। प्रकृति के सूक्ष्मतम सत्यों का पता वस्तुतः चेतना की सूक्ष्म अवस्था तक पहुँचकर ही चल सकता है।

जीवन की सूक्ष्मतम इकाई को अभी जीवाणु कहते हैं। जीवाणु (वैक्टीरिया) इतने छोटे होते हैं कि एक इंच की लाइन में उन्हें क्रमवार बैठाया जाये, तो उनकी संख्या कोई १०००० बड़े आराम से बैठ जायेगी। बाल की चौड़ाई में 'कोकस' नाम के जीवाणु १०० की संख्या में मजे से बैठ सकते हैं, इतनी सूक्ष्म अवस्था में जीवन का होना भारतीय तत्त्व-दर्शन के 'अणोरणीयान महतो महीयानात्मा' 'यह आत्मा अणु से भी छोटी और विराट् से भी विराट् है', सिद्धांत की ही पुष्टि करता है। आत्मा का अर्थ यहाँ भी जीव-चेतना के उस स्वरूप से है, जो अगणितीय (नानमैथेमेटिकल) सिद्धांतों पर खाता-पीता, पहनता, उठता-चलता, बातें करता, बोलता, हँसता, चिल्लाता, प्रेम, करुणा, दया आदि की अभिव्यक्ति करता पाया जाता है। शरीर से चाहे वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी—जिसमें जीव-चेतना के लक्षण हैं, सब आत्मा हैं। विविध रूपों में होते हुए भी एक विश्वात्मा एक ही है, यह अनुभूति हम चेतना की अत्यंत सूक्ष्म अवस्था तक पहुँचकर ही कर सकते हैं।

जीवात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए न्यायदर्शन में लिखा है—

इच्छाद्वेष प्रयत्न सुख-दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिंगम्।

—न्याय-दर्शन १।१।१०,

अर्थात्—जिसमें भी इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख, ज्ञान और प्रयत्न आदि गुण हैं, वह सब जीवात्मा हैं।

जीवात्मा अपने ज्ञान और प्रयत्न के द्वारा कर्म करता है और यह कर्म ही उसे विभिन्न योनियों में भ्रमण कराते हैं। जब तक वह अपने शुद्ध तेजस् स्वरूप को जान नहीं लेता और उसी में लय नहीं हो जाता, तब तक वह जीव भाव में बना सांसारिक दुःख-सुख भोगता रहता है, किंतु जब वह शुद्ध चैतन्य की प्राप्ति का प्रयत्न करने लगता है, तब वह बार-बार अनेक तरह के शरीर धारण करने की चिंता से भी मुक्त हो जाता है।

यह बात जीवाणु के परिचय से बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। जीवाणु सबसे छोटे जीवों को कहते हैं, उनकी शारीरिक बनावट मनुष्य से बिल्कुल भिन्न होती है।

जीवाणु कितना खाते हैं ? इसका कोई अनुमान भी नहीं कर सकता। पेटू और आलसी आदमी जिस प्रकार केवल खाने और बच्चे पैदा करने में निपुण होते हैं, ज्ञान, विद्या, विवेक, सफलता और नई-नई तरह की शोध करने की योग्यतायें उनमें विकसित नहीं हो पातीं, उसी तरह जीवाणु भी केवल खाते-पीते और बच्चे पैदा करते रहते हैं। जीवाणु एक घंटे में अपने भार से दो गुना अधिक खा डालता है। जब तक भोजन मिलता रहता है, वह खाता ही रहता है। गंधक, लोहा, अंडे, खून, सड़े-गले पत्ते, लकड़ी और मरे हुए जानवर ही इनका आहार है, इस दृष्टि से जीवाणु बहुत कुछ मनुष्य का हित भी करते रहते हैं, जीवाणु न होते तो पृथ्वी पर गंदगी इतनी अधिक बढ़ जाती कि मनुष्य का जीवित रहना कठिन हो जाता।

कुछ जहरीले जीवाणु कॉर्बन मोनो ऑक्साइड पर जीवित रहते हैं। यह एक जहरीली गैस है और मनुष्य के लिये अहितकारक। भगवान् शिव की तरह विष से मानव-जाति की सुरक्षा का एक महान् परोपकारी कार्य जीवाणु संपन्न करते हैं,

जबकि मनुष्य अधिकांश अपने ही निकृष्ट स्वार्थ-भोग में लगा रहता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक मनुष्य को अमीबा और बंदरों का क्रमिक विकास मानते हैं। उनसे जब अमैथुनी सृष्टि की बात कही जाती है, तब वे भारतीय तत्त्व-दर्शन पर आक्षेप करते हैं। आश्चर्य है कि सृष्टि प्रक्रिया जीवाणुओं पर अमैथुनी होती है, इससे भी वे चेतना के सूक्ष्म दर्शन की अनुभूति नहीं कर पाते। जीवाणुओं की संतानोत्पत्ति जितनी विलक्षण है, उतनी ही आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप का प्रतिपादन करने वाली भी। खमीर पैदा करने वाला एक जीवाणु (बैक्टीरिया) ले लें, आप देखेंगे कि नर और मादा दोनों का काम यह एक ही जीवाणु कर देता है और सिद्ध करता है कि आत्मा न तो पुरुष है, न स्त्री। वह तो शुद्ध चेतना मात्र है, स्त्री के शरीर में आ जाने से स्त्री भाव, पुरुष के शरीर में आ जाने पर पुरुष हो जाता है। यही चेतना भैंस के शरीर में भैंस, हाथी के शरीर में हाथी बन जाती है। शरीरों में अंतर है, पर तत्त्वतः आत्मा एक ही प्रकार की चेतना है।

एक जीवाणु बढ़कर जब पूर्ण हो जाता है, तब उसी में से कोंपल फूटती हैं। नाभिक (न्यूक्लियस) थोड़ी देर में बँट जाता है और एक नये जीवाणु का रूप लेता है। जन्म से थोड़ी देर बाद ही वह भी जन्म दर बढ़ाना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार पिता और पुत्र दोनों बच्चे पैदा करते चले जाते हैं—१ से २, २ से ४, ४ से ८ और ८ से १६—इस क्रम में बढ़ते हुए एक सप्ताह में खमीर का जीवाणु १२८ पीढ़ी तैयार कर लेता है, उनमें से लाखों जीवाणु तो एक घंटे में ही पैदा हुए होते हैं। वह भी बच्चे पैदा करने लगते हैं, जबकि उनका बूढ़ा पितामह भी उन मूर्खों की तरह बच्चा पैदा में लगा होता है, जिन्हें यह पता नहीं होता कि बच्चे पैदा करना ही काफी नहीं, उनकी शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका आदि का

प्रबंध न हुआ तो बढ़ी हुई जनसख्या संकट ही उत्पन्न कर सकती है। जीवाणुओं का अस्तित्व और उनका बेतहाशा प्रजनन भी मनुष्य जाति के लिए खतरनाक ही होता है।

मनुष्य तो भी समझदार है, क्योंकि वह औसतन २५ वर्ष में नई पीढ़ी को जन्म देता है, यह बात दूसरी है कि आजकल दूषित और गरिष्ठ आहार तथा कामुकता के कारण नवयुवक छोटी आयु में ही बच्चे पैदा करने लगते हैं और इस तरह जनसंख्या की वृद्धि के साथ अपना और परिवार का स्वास्थ्य भी चौपट करते हैं, अन्यथा २५ वर्ष की आयु स्वाभाविक है। उससे जनसंख्या और अन्य समस्याओं का संतुलन बना रहता है। यदि मनुष्य इतना विवेक नहीं रख सकता तो वह भी उन जीवाणुओं की ही तरह समझा जायेगा, जो केवल ५ मिनट बाद एक नया बच्चा पैदा कर देते हैं। २४ घंटों में इनकी ६६ पीढ़ियाँ जन्म ले लेती हैं, मनुष्य को इतनी पीढ़ियों के लिये कम से कम दो हजार वर्ष चाहिए। २४ घंटे की इस अवधि में कुल उत्पन्न संतानों की संख्या २६६ (अर्थात् दो-दो को ६६ बार गुणा किया जाए) होगी। अक्षरों में लिखने में यह संख्या थोड़ी समझ में आ रही होगी, पर यदि विधिवत् गुणा करके देखा जाए तो यह संख्या २८१३७४६८००४०६५६ × २८१३७४६८००४०६५६ होगी। यह संख्या इतनी बड़ी होगी, जिसका अनुमान करना कठिन है। यह तो एक जीवाणु की एक दिन की पैदाइश है, यदि मनुष्य भी ऐसे ही जनसंख्या बढ़ाने की भूल करे तो पृथ्वी पर आहार, विहार, निवास और कृषि उत्पादन आदि की कैसी बुरी स्थिति हो ? सौभाग्य है कि जीवाणु बहुत छोटे हैं, इसलिये उनके सर्वत्र भरे होने से भी हमारे सब काम चलते रहते हैं, पर यह नितांत संभव है कि हमारी प्रत्येक साँस के साथ लाखों जीवाणु शरीर में आते-जाते रहते हों। प्रकृति की इस विलक्षणता से मनुष्य की रक्षा भगवान् ही करता है अन्यथा यदि विषैले जीवाणुओं

की संख्या बढ़ जाती तो पृथ्वी पर रहने वाले सभी मनुष्यों को उसी तरह नजरबंद रहना पड़ता, जिस तरह चंद्रमा से कोई विषाणु (वायरस) न आ जाये, इस भय से चंद्र-यात्री नील आर्मस्ट्रांग, एडविन एल्ड्रिन और कोलिन्स को चंद्रमा से उतरते ही नजरबंद करके तब तक रखा गया, जब तक उन्हें अनेक प्रकार के रसायनों से धोकर बिल्कुल शुद्ध और साफ न कर लिया गया।

मनुष्य का यह सोचना व्यर्थ है कि अनेक प्रकार के देश और वर्णों में पाये जाने का सौभाग्य केवल उसे ही मिला है, यह तो सब प्रकृति और परमेश्वर का खेल है, जो जीवन की सूक्ष्म इकाई जीवाणुओं में भी हैं। इनकी लाखों किस्में हैं और हजारों तरह के आकार। आड़े-टेढ़े, कुबड़े, षटकोण, लंबवत् विलक्षण शिवजी की बारात। कोई फैले रहते हैं, कोई गुच्छों में समुदाय बनाकर, कोई विष पैदा करते हैं, कोई मनुष्य जाति के हित के काम भी। 'काकस', 'डिप्थीरिया', 'स्फरोचेट्स' नामक जीवाणु जहाँ उपदंश, फफोले, मवाद पैदा कर देते हैं, वहाँ वे जीवाणु भी हैं, जो दूध को दही में बदलकर और भी सुपाच्य और स्वास्थ्यवर्द्धक बना देते हैं।

जो अच्छे प्रकार के जीवाणु होते हैं उन्हें काम में लाया जाता है। अच्छे मनुष्यों की तरह सम्मान दिया जाता है, जबकि बुरे और विषैले जीवाणुओं को मारने के लिये संसार भर में इतनी दवायें बनी हैं, जितने खराब मनुष्यों के लिए दंड विधान। कहीं अपराधियों को जेल दी जाती है, कहीं काला पानी, कहीं उनका खाना बंद कर दिया जाता है, कहीं सामाजिक संपर्क। उसी तरह औषधियों के द्वारा खराब जीवाणुओं को भी नष्ट करके मारा जाता है। दंड का यह विधान कठोरतापूर्वक न चले तो उससे मानव-जाति का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाये, इसीलिये सत्पुरुष

के लिये दया और करुणा जितनी आवश्यक है, बुरे व्यक्ति को दंड भी उतना ही आवश्यक है।

हमारे आस-पास के संपूर्ण प्राकृतिक जीवन में यह क्रियायें चलती रहती हैं, पर हम जान नहीं पाते। मनुष्य की भौतिक आँखें बहुत छोटी हैं, इसलिये यह दृश्य केवल ज्ञान से ही देख या अनुभव कर सकते हैं। पर यह एक सत्य भी है कि इन अनुभूतियों को योग और साधनाओं द्वारा स्पष्ट बनाया जाता है। मनुष्य अपने को शरीर मानने की भूल को छोड़ता हुआ चला जाये और शुद्ध आत्म-चेतना की अनुभूति तक पहुँच जाये तो वह चींटी ही नहीं, जीवाणु की उस सूक्ष्म सत्ता तक भी पहुँचकर सब कुछ यंत्रवत् देख सकता है, जिसका व्यास १।३०००० इंच तक होता है। वैज्ञानिक यंत्र इस बात के प्रमाण हैं कि आत्म-चेतना के लिये असंभव कुछ है नहीं।

जीवाणुओं को जिस यंत्र से देखते हैं, उसका नाम है 'माइक्रोस्कोप'। माइक्रोस्कोप में काँच के ऐसे शीशे (लेन्स) लगाये जाते हैं, जो प्रकाश किरणों के समूह (बीम) को एक छोटे से छोटे बिंदु से गुजार सकें। प्रकाश की ऐसी बलवान् किरणें छोटी से छोटी वस्तु को इतना बड़ा करके दिखा देती हैं, जितना बड़ा आकार उस वस्तु का कभी संभव ही नहीं हो। उदाहरण के लिए यदि ५ फुट के व्यक्ति को यदि १००० गुना बढ़ाकर दिखाया जाए तो उसकी आकृति ५००० फुट की दिखाई देगी। अर्थात् वह मनुष्य पर्वताकार लगेगा। अब तो 'इलेक्ट्रॉनिक माइक्रोस्कोप' चल गये हैं, एक बार परीक्षण के तौर पर १२ इंच के बाल को 'इलेक्ट्रॉनिक माइक्रोस्कोप' से देखा गया तो उसकी बढ़ी हुई लंबाई २० मील थी और चौड़ाई २० फुट। इतना बड़ा बाल संसार में शायद ही कभी संभव हो, पर प्रकाश किरणों की शक्ति ने यह संभव कर दिया। यदि आत्म-चेतना भी इतनी सूक्ष्म की जा सके तो वह एक

परमाणु में ही संपूर्ण ब्रह्मांड को देख सकती है। भारतीय योग दर्शन और चित्त-निरोध का यही उद्देश्य है कि मनुष्य अपने मन की सूक्ष्मता में बैठकर विराट् ब्रह्मांड का दिग्दर्शन करे, तभी विश्व के यथार्थ को समझा जा सकता है। जीवाणुओं की परीक्षा और उन पर प्रयोग ऐसी ही स्थिति में बन पड़ता है, जब उन्हें माइक्रोस्कोप द्वारा कई हजार और लाख गुना बढ़ाकर देखते हैं। अन्यथा उनके अस्तित्व का ही पता न चलता। सूक्ष्मता का दर्शन मनुष्य भी उसी प्रकार आत्मा के विकास के द्वारा ही देख सकता है।

जीवाणु आत्मा के अनेक रहस्यों की सत्यता का प्रतिपादन करते हैं। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

—२।२३

हे अर्जुन ! यह आत्मा बड़ी विलक्षण है, न तो इसे शस्त्र छेद सकते हैं और न ही अग्नि इसे जला सकती है, जल गीला नहीं कर सकता न हवा इसे सुखा सकती है।

मनुष्य के से शरीर जटिलता से युक्त अत्यंत सूक्ष्म जीवाणु के अध्ययन से यह सारी बातें सत्य पाई गईं, कई जीवाणु जिन्हें गीले स्थान में ही रहने का अभ्यास था, उन्हें सुखे में लाया गया तब भी उनके जीवन को कोई संकट नहीं उपस्थित हुआ। वे २० वर्ष तक बराबर आर्द्रता की प्रतीक्षा करते रहे। इसी प्रकार उन पर तेज से तेज सूर्य की धूप का भी प्रभाव नहीं होता, ठंडे से ठंडे स्थान में भी जीवाणु मरते नहीं और उन्हें कुछ खाने को न मिले तो भी वे अपना जीवन धारण किये रहते हैं।

चेतना और प्रकृति के द्वैत संबंध और आत्मा के स्वरूप को जीवाणु के अस्तित्व और अध्ययन द्वारा बहुत स्पष्ट अंशों में

समझा जा सकता है, साथ ही मानवीय व्यवहार का बहुत सा मार्गदर्शन भी उससे प्राप्त किया जा सकता है।

जीवाणु के यह गुण, यह सूक्ष्मता इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आत्म-चेतना प्रकृति के जड़ परमाणुओं से भिन्न अत्यंत सूक्ष्म, अमर और सर्वशक्तिमान् सत्ता है, उसे अत्यंत सूक्ष्मता की अनुभूति द्वारा ही जाना और पहचाना जा सकता है।

जड़वाद एक बौद्धिक दुर्भाग्य

जड़ जगत् को ही सब कुछ मान लेना और चेतना को भी जड़ के पीछे काम करने वाली हलचलों की प्रतिक्रिया समझ बैठना जड़वाद का अंध समर्थन मात्र है। चेतना के अस्तित्व को झुठलाया जाना अपने युग का बौद्धिक दुर्भाग्य ही कहा जायगा। जिस चेतना ने जड़-पदार्थों को साज-सँभालकर उपयोगी एवं सुंदर बनाया—जिस चेतना ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि से प्रकृति के अनेकानेक रहस्यों को जाना और उनसे लाभान्वित हो सकने की स्थिति तक मनुष्य को पहुँचाया, उसी चेतना के अस्तित्व तक से हम इनकार करने लगें तो इसे आत्म-विस्मृति के अतिरिक्त और क्या कहा जाएगा ?

चेतना का अस्तित्व हम शरीर के माध्यम से भी अनुभव करते हैं, पर वह उतने तक ही सीमित नहीं है। शरीर के बिना भी उसका अस्तित्व बना रहता है। प्रकृति का सूक्ष्म स्वरूप तो यंत्र उपकरणों की सहायता से खोजा-पकड़ा जा सकता है, पर चेतना की परख के लिए कोई भौतिक साधन बनकर तैयार नहीं हुए हैं। ये हो भी नहीं सकेंगे, क्योंकि भौतिक उपकरण अपने सहधर्मी भौतिक पदार्थों को ही पकड़ सकते हैं। शरीर और उसकी इंद्रियाँ पंचभूत तत्त्वों से बनी हैं। इसलिए उनकी अनुभूतियाँ भी तत्त्वों से बने परमाणुपरक पदार्थों के आधार पर ही कुछ निष्कर्ष निकालती एवं रस लेती हैं। मशीन भी प्रायः धातुओं से बनी और विद्युत् जैसी

भौतिक ऊर्जाओं से चलती हैं। ऐसी दशा में उनका परख क्षेत्र भी स्थूल अथवा सूक्ष्म—दृश्य अथवा अदृश्य जड़ जगत् तक ही सीमाबद्ध रहता है। चेतना को तो चेतना ही अनुभव कर सकती है। चेतना को समझने का कोई यंत्र बन सका तो वह चेतना ही होगा। आत्मा और परमात्मा की प्रयोगशालाओं में अब तक सिद्ध नहीं किया जा सका और वह भविष्य में भी सिद्ध न हो सकेगा। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने इन दोनों की सत्ता को अस्वीकार किया है। वे शरीर को चलता-फिरता पौधा मानते हैं और उसका चेतना को मस्तिष्कीय हलचल कहते हैं। मस्तिष्क तो शरीर का ही अंग है। इसलिए वे आत्मा की परिभाषा शरीर तक ही सीमित रखते हैं और मरने के बाद आत्मा की समाप्ति की बात कहते हैं। परमात्मा के संबंध में भी उनका ऐसा कथन है। प्रकृति व्यवस्था को वे स्वसंचालित मानते हैं। सृष्टि में चल रही विभिन्न व्यवस्थाओं को वे अपने आप—अपने ढर्रे या धुरी पर घूमती हुई कहते हैं और इसमें किसी ईश्वर का दखल स्वीकार नहीं करते।

कठिनाई यह है कि विज्ञान जगत् प्रत्यक्ष भौतिक प्रयोग-परीक्षणों को ही सब कुछ मान बैठता है और प्रयोगशालाओं की सिद्धि को ही प्रामाणिक ठहराता है, जबकि तर्क और तथ्य यह भी कहते हैं कि इस विश्व के रहस्यों को—विशेषतया चेतन तथ्यों को जानने के लिए प्रयोगशालाओं की उपलब्धियों तक ही सीमित नहीं रहा जा सकता।

पदार्थों में पाई जाने वाली हलचल स्वसंचालित हो सकती है, यह प्रतिपादन गले नहीं उतरता। चेतन संचालन के बिना वस्तुएँ निश्चेष्ट और अस्त-व्यस्त पड़ी रहती हैं। बहुमूल्य जलयान, वायुयान, रेल इंजन आदि बिना ड्राइवर के नहीं चलते फिर असीम ब्रह्मांडव्यापी अंतर्ग्रही और सीमित परमाणु सत्ता में जो सुव्यवस्थित अनवरत गति चक्र चल रहा है, वह अनायास स्वसंचालित कैसे हो

सकता है ? इसके पीछे चेतन शक्ति की प्रेरणा एवं व्यवस्था होनी आवश्यक है। इसे तर्क बुद्धि सहज ही समझ सकती है। यदि विवेक, तर्क एवं बुद्धि को भी यांत्रिक उपकरणों की तरह ही साक्षी-साधन मान लिया जाए तो फिर ईश्वर के अस्तित्व को समझने-स्वीकार करने में कोई कठिनाई न रहेगी।

आत्मा के अस्तित्व को प्रयोगशाला में तो सिद्ध नहीं किया जा सका, पर अन्य ऐसे अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि मरने के बाद भी जीव चेतना का अस्तित्व बना रहता है। इस तथ्य की साक्षी में प्रेतात्माओं की हलचलें तथा पुनर्जन्म की ऐसी घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं जो प्रामाणिक व्यक्तियों के अनुभव में आई हैं और उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता। इसी प्रकार पुनर्जन्म के भी अगणित प्रमाण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि पिछले जन्म की ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण नये जन्म में स्मरण बना रह सकता है, जो अन्य लोगों को विदित नहीं था। किसी ने सिखा-पढ़ाकर पूर्व जन्म विवरण का कौतूहल तो खड़ा नहीं कर दिया है। इस आशंका की काट उन प्रमाणों से हो जाती है, जिनमें बालकों ने अपने पूर्वजन्म के संबंधियों को पहचाना और नाम लेकर पुकारा है। इसी प्रकार उन्होंने नितांत व्यक्तिगत ऐसी घटनाएँ सुनाई हैं, जो संबद्ध व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को विदित नहीं हो सकती थीं। जमीन में अपना गड़ा हुआ धन बताकर उसे निकलवाना पूर्व स्मृति का ठोस प्रमाण समझा जा सकता है। प्रेतात्माओं के अस्तित्व और पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाणों को भी यदि प्रयोगशाला के सिद्ध तथ्यों की तुलना में माना जा सके तो फिर आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

'दी ह्यूमन परसनैलिटी एंड इट्स सरवाइवल ऑफ वाडीली डैथ' नामक पुस्तक में ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं,

जो शरीर में पृथक् आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। कई उदाहरण—एक व्यक्ति के शरीर पर किसी दूसरी आत्मा द्वारा आधिपत्य रखने और फिर उसे मुक्त कर देने के हैं। साथ ही संगीत, गणित, ललित कलाओं आदि में अद्‌भुत क्षमता व प्रवीणता वाले बच्चों के विवरण भी हैं, जिनका असाधारण ज्ञान पूर्वजन्म की संचित ज्ञान-सामग्री ही सिद्ध होता है।

गणितशास्त्री ओस्पेन्स्की ने तीन ग्रंथों में गणित के आधार पर चेतना के व्यापक अस्तित्व को सिद्ध करने का अकाट्य प्रयत्न किया है। इस संदर्भ में उनके द्वारा लिखे गये ग्रंथों में 'इन सर्च ऑफ दि मिरेकुलस—टर्टियम आर्गेनम थ्योरी ऑफ इंटरनल लाइफ' अधिक प्रसिद्ध है।

भौतिकी के आचार्य राबर्ट मायर ने ऊर्जा के दर्शन पर जो खोजें की हैं, वे बताती हैं कि उसकी अधिकाधिक सूक्ष्म स्थिति में जो तत्त्व शेष रह जाता है, उसे चेतना की संज्ञा दी जा सकती है। यह उच्चस्तर पर एकरस और सर्वव्यापी स्थिति में बनी रहती है। उसका उत्पादन और विलयन क्रम तो स्थूल रूप से ही चलता है।

मनोविज्ञानी जे० वी० राइन ने मानवी मनश्चेतना को पराजागतिक और पराभौतिक की संज्ञा दी है। वे उसका स्वरूप विद्युतीय एवं चुंबकीय स्तर की ऐसी स्वतंत्र इकाई के रूप में मानते हैं जो मरने के बाद भी अपनी सत्ता बनाये रहती है। उसमें इतने प्रबल संकल्प भी जुड़े रहते हैं, जिनके सहारे पुराने स्तर की तथा नये प्रकार की किसी आकृति का सृजन और धारण कर सके। उनकी दृष्टि में वह व्यक्ति चेतना दृश्य अथवा अदृश्य स्थिति में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रहने में पूर्णतया समर्थ है।

आइन्स्टाइन ने सृष्टि के मूल में चेतना को सक्रिय माना था। जे० ए० थामसन, जेम्स जोन्स, ए० एस० एडिग्रन आदि ने विज्ञान की नवीन दिशाओं का अलग-अलग विवेचन करते हुए एक ही

बात कही है—विज्ञान के पास जीवन के प्रारंभ होने की कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं है। वैज्ञानिक अन्वेषण अब चेतना और विचार जगत् की ओर बढ़ रहे हैं।

भारतीय दर्शन और संस्कृति आदिकाल से आत्मा की अखंडता पर आस्थावान् हैं। अणु मात्र होकर भी वह संपूर्ण शरीर पर आधिपत्य रखता है। भावनात्मक परिष्कार से आत्मबल बढ़ता है और अपने स्वरूप को जानने वाला जीवात्मा परमात्म-सत्ता से एक रूप हो जाता है।

नोबुल पुरस्कार विजेता भौतिकीविद् श्री पियरे दि कोम्ते ने आत्मा को विश्वात्मा से संबंधित बताया है तथा इसी आधार पर उसे अमर भी कहा है, क्योंकि विश्व चेतना अमर है और आत्मा उसी की छोटी इकाई मात्र है।

इलेक्ट्रो डायनेमिक सिद्धांतों के अनुसार 'ईगो' की छानबीन की जाने पर ये तथ्य सामने आए हैं कि जन्म-मरण-चक्र में भ्रमण करती हुई, भिन्न-भिन्न आकृति-प्रकृति अपनाते हुए भी, मूल-सत्ता अक्षुण्ण रहती है।

विभिन्न खोजों के बाद विश्वविख्यात वैज्ञानिक फ्रेड हायल तथा जयंत विष्णु नार्लीकार ने यह स्थापना की है कि विश्व रचना में कारणभूत अणु और मानवीय शरीर की संरचना में कारणभूत जीवाणु की मूल संरचना एक-सी है।

"दि सूट्स ऑफ कोइन्सिडेंस" के लेखक को डॉ० आर्थर कोएस्लर ने जीवात्मा को आणविक या रासायनिक संघात से सर्वथा भिन्न माना है।

'यू डू टेक इट विद यू' के लेखक डिविट मिलर ने मस्तिष्कीय कोषों में ही घुली हुई एक अतिरिक्त चेतना को माना है तथा उसका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार किया है। यह चेतना मस्तिष्क के कोषों को प्रभावित करती है।

हमारा विश्व एक विराट् शक्ति-सागर है। यह शक्ति-सागर जड़ चेतन से मिश्रित है। प्राणियों की सत्ता इनमें एक बुलबुले की तरह स्वतंत्र अस्तित्व बनाती है, विकसित होती है और समयानुकूल विलीन हो जाती है।

मूर्धन्य वैज्ञानिकों की मान्यता है कि इस विराट् शक्ति सागर में एक भौतिक शक्तिधारा है, दूसरी प्राणिज। दोनों एक अविच्छिन्न युग्म बनाती हैं।

विकासमान विज्ञान अब जीवन को रासायनिक संयोग मात्र नहीं मानता। मनश्चेतना की मरणोत्तर सत्ता तो स्वीकार ही कर ली गई है। अब चेतना जगत् की स्वतंत्र सत्ता को एक घटक मानने की बारी है।

आश्चर्यजनक सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर जगत्

आजकल विज्ञान केवल प्रत्यक्ष और प्रमाण सिद्ध को ही सत्य मानने का आग्रह लेकर चलता रहा है। परंतु यह कोई आवश्यक नहीं है कि जो प्रत्यक्ष दिखाई दे या अनुभव में आये वह सत्य ही हो। जो कुछ हम आँखों से देखते हैं, क्या वही सत्य है ? इस प्रश्न का उत्तर एक बारगी तो हाँ में ही दिया जा सकता है, पर वस्तुतः वह नितांत बालकों जैसा ही होगा। वस्तुतः जो कुछ हम देखते हैं, वह इन अस्तित्वों का अति स्वल्प अंश है—जिसे हम देख नहीं सकते। न केवल खुली आँखों से वरन् सूक्ष्मदर्शी यंत्र भी उन्हें देखने में ही नहीं अनुभव करने में असमर्थ रहते हैं।

इतना ही नहीं, प्रत्यक्ष अनुभव भी कहाँ और कितने सही होते हैं ? उदाहरण के लिये तो देखने में लगता है कि आप भारतवर्ष के निवासी हैं, पर उसी समय आप पृथ्वी के भी निवासी हैं, पर उसी समय सौरमंडल के भी।

सूर्य एक सेकंड में २०० ट्रिलियन अर्थात् १००० मिलियन (१०००,००००० किलोवाट) किलोवाट ऊर्जा पृथ्वी पर फेंकता है।

वह ऊर्जा इतनी अधिक होती है कि उससे नीपर जैसे १ करोड़ बिजलीघर स्थापित हो सकते हैं। सारी पृथ्वी की चार अरब आबादी तथा चींटी, मक्खी, कौवे, गिद्ध, भेड़, बकरी, गाय, हाथी, शेर, पेड़-पौधे, बादल, समुद्र सभी इस शक्ति से ही गतिशील हैं। जिसमें यह शक्ति जितनी अधिक है (प्राणतत्त्व की अधिकता) वह उतना ही शक्तिशाली और वैभव का स्वामी है। कीड़े-मकोड़े उसके एक कण से ही जीवित हैं तो वृक्ष-वनस्पतियाँ उसका सबसे अधिक भाग उपयोग में लाती हैं। मनुष्य इन सबसे भाग्यशाली है, क्योंकि वह इस शक्ति के सुरक्षित और संचित कोष को भी प्राणायाम और योग-साधनाओं द्वारा मनचाही मात्रा में प्राप्त भी कर सकता है।

हमारे लिये वर्ष ३६५$\frac{१}{४}$ दिन का होता है, पर सूर्य के लिए वह अपनी एक हजार किरणों के घूमने भर का समय। सूर्य का प्रकाश हर क्षण पृथ्वी के आधे भाग पर पड़ता है अर्थात् सूर्य का एक सेकंड पृथ्वी के निवासी के लिये १२ घंटे। कीट-पतंगों के लिए तो उसे कल्प ही कहना चाहिये। सूर्य अरबों वर्ष से जी रहा है और करोड़ों वर्ष तक जियेगा, पर इतनी अवधि में तो मनुष्यों की लाखों पीढ़ियाँ मर-खप चुकी होंगी, यदि सृष्टि के प्रारंभ से लेकर अब तक जितने लोग जन्म ले चुके हैं, उन सबके नाम लिखना संभव हो तो उसके लिए पृथ्वी के भार से कम कागज की आवश्यकता न पड़ेगी। सूर्य का एक जन्म इतना बड़ा है कि मनुष्य उसकी तुलना में अरबवें हिस्से की भी जिंदगी नहीं ले पायेगा।

ठीक यही बात मनुष्य की तुलना में कीट-पतंगों की है। वायु मंडल में ऐसे जीव हैं, जो इतने सूक्ष्म हैं कि उनको इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी से ही देखना संभव है। उनमें एक ही कोश (सेल) होता है। उसमें केंद्रक सूर्य का ही एक कण होता है अन्य तत्त्वों में कोई भी खनिज, लवण या प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट मिलेंगे। अर्थात्

जीव-चेतना और प्रकृति का समन्वय ही दृश्य जगत् है। मनुष्य में गर्मी अधिक है, १०० वर्ष का जीवन उसे प्राप्त है, पर कीड़े-मकोड़े शक्ति के एक अणु और शरीर के एक कोश से ही मनुष्य जैसी आयु भोग लेते हैं। मनुष्य जितने दिन में एक आयु भोगता है, उतने में कीट-पतंगों से कई कल्प हो जाते हैं। प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक एन० एस० श्वेरबिनोवस्की एक कृमि-विशेषज्ञ थे, उन्होंने ५० वर्ष तक कीट-पतंगों के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया और उससे कृषिनाशक कीटाणुओं के संबंध में महत्वपूर्ण खोजें कीं। उन्हीं खोजों में भारतीय दर्शन को प्रमाणित करने वाले तथ्य भी प्रकाश में आये। वे लिखते हैं—टिड्डियों की सामूहिक वंशवृद्धि की अवधि सूर्य के एक चक्र अर्थात् ११ वर्ष से है अर्थात् ११ वर्ष में उनकी प्रलय और नई सृष्टि का एक क्रम पूरा हो जाता है। बीविल जो चुकंदर कुतरने वाला कीड़ा होता है, वह भी ११ वर्षीय चक्र से संबंधित है, पर कुछ कीड़ों की सामूहिक वृद्धि २२ वर्ष, कुछ की ३३ वर्ष है। इस आधार पर उन्होंने लिखा है कि पृथ्वी का सारा जीवन ही सूर्य पर आधारित है। सिद्ध होता है कि नन्हें-नन्हें जीवाणु (बैक्टीरिया) तथा विषाणु (वायरस) सभी का जीवन कोश (नाभिक या न्यूक्लियस) सूर्य का ही प्रकाश स्फुलिंग और चेतन परमाणु है, जबकि उनके कोशिका सार (साइटोप्लाज्म) में अन्य पार्थिव तत्त्व। जीवन चेतना सर्वत्र एक सी है, परिभ्रमण केवल मन की वासना के अनुसार ही चलता रहता है।

नाभिक में भी नाभिक (न्यूक्लिओलस) होते हैं, जिससे यह भी सिद्ध होता है कि जिस प्रकार कोशिका सार (साइटोप्लाज्म) का सूर्य नाभिक होता, नाभिक अग्नितत्त्व होता है, अग्नि या प्राण में ही मन होता है, उसी प्रकार मन की चेतना में ही विश्व चेतना या ईश्वरीय चेतना समाहित होनी चाहिए। प्रत्यक्ष में सूर्य भी स्व-प्रकाशित नहीं, वह आकाश गंगा और नीहारिकाओं के माध्यम

से किसी सुदूर केंद्रक से ही जीवन प्राप्त कर रहा है अर्थात् सृष्टि के समस्त मूल में एक सर्वोपरि शक्ति है, उसे ही परमात्मा माना गया है, वही चेतना पदार्थ के संयोग से जीवों के रूप में व्यक्त होती हैं। श्रीशंकराचार्य ने तत्त्वबोध में इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है—

नित्य-शुद्ध-विमुक्तकमखंडानंदमद्वयम्।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेवतत्।।
एवं निरंतराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना।
हरत्यविद्या विक्षेपान् रोगानिव रसायनम्।।

—तत्त्वबोध ३६-३७

अर्थात्—जो तीनों कालों में रहने वाला, कभी नाश नहीं होता जिसका, जो मलरहित और संसार से विरक्त एक और अखंड अद्वितीय आनंद रूप है, वही ब्रह्म है, किंतु वही ईश्वरीय चेतना "मैं हूँ" के अहंकार भाव के निरंतर अभ्यास से उत्पन्न हुई वासना रोगों को रसायन के समान अविद्या से उत्पन्न होने वाले चित्त विक्षेप के कारण वास्तविक ज्ञान को नष्ट कर देती है और ईश्वरीय चेतना जीव रूप में काम करती हुई वासनाओं की पूर्ति में कभी यह कभी वह शरीर धारण करती भ्रमण करने लगती है।

हमें मालूम है कि सूर्य ही नहीं चंद्रमा, बृहस्पति, शुक्र, शनि तथा सभी तारागण तक विकिरण करते हैं। किसी भी एक बिंदु को ले लें और कल्पना करें कि वहाँ सभी विकिरण आड़ी-टेढ़ी दिशा में गमन कर रहे हैं तो पता चलेगा कि एक ही स्थान पर सूर्य प्रकाश का कण चंद्रमा के कण को, चंद्रमा का बृहस्पति के कण को, बृहस्पति का शनि के कण को पार कर रहा होगा—फिर यह क्रम निरंतर चल रहा होगा अर्थात् सिनेमा के पर्दे की तरह की गति और दृश्य उस समय हर ग्रह-नक्षत्र के अंतर्वर्ती क्षेत्र का विद्यमान होगा। जिस प्रकार सूर्य के रासायनिक आकाश मंडल में

हाइड्रोजन, हीलियम, कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, सोडियम, सिलिकन, गंधक, टाइटैनियम, मैंगनीज, कोबाल्ट, निकेल, जिंक आदि २४ रासायनिक तत्त्व विद्यमान हैं, उसी प्रकार हर ग्रह के आकाश क्षेत्र में भिन्न जाति के आकाश मंडल हैं। यह तत्त्व ही ब्रह्मांड का निर्माण करते हैं। विकिरण उनका प्रभाव क्षेत्र लिये होंगे अर्थात् वातावरण के हर बिंदु पर विश्व का हर दृश्य विद्यमान है। मूल चेतना उनमें से अपनी इच्छा (इच्छा आकाश स्वरूप है) और वासना के क्षेत्र में विद्यमान रहती होगी तो कुछ आश्चर्य नहीं, यदि वह पृथ्वी के ही किसी आकाश में रहकर भी किसी अन्य ग्रहों के दृश्यों और रासायनिक अनुभूतियों का रस ले रही हो।

वायुमंडल ही नहीं, जीवन से रिक्त कोई स्थान नहीं। प्रसिद्ध डच व्यापारी 'एंटान वान लीवेनहीक' को जब भी अवकाश मिलता वह शीशों के कोने रगड़-रगड़कर लेन्स बनाया करता। उसने एकबार एक ऐसा लेन्स बनाया, जो वस्तु को २७० गुना बड़ा करके दिखा सकता था। उसनी पहली बार गंदे पानी और सड़े अन्न में हजारों की सृष्टि देखी। कौतूहलवश एक बार उसने वर्षा का शुद्ध जल एकत्र किया, उसकी मंशा यह जानने की थी कि क्या शुद्ध जल में भी कीटाणु होते हैं और वह यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसमें भी जीवाणु उपस्थित थे। उसने अपनी पुत्री मारिया को बुलाकर एक विलक्षण संसार दिखाया—यह जीवाणु जल में तैर ही नहीं रहे थे तरह-तरह की क्रीड़ायें करते हुए वह दिखा रहे थे कि उनमें यह इच्छायें, आकांक्षाएँ मनुष्य के समान ही हैं—भले ही मनुष्य जटिल कोश प्रणाली वाला जीव क्यों न हो, पर चेतना के गुणों की दृष्टि से मनुष्य और उन छोटे जीवाणुओं में कोई अंतर नहीं था। यह जीवाणु हवा से पानी में आये थे।

१८३८ में पौधों की संरचना का परीक्षण करते समय वैज्ञानिक माथियास शेलिडेन ने देखा कि पौधे भी कोशिकाओं से बने हैं और यह कोशिकाएँ भी बड़े जीव के भीतर एक जीवित जीव है। इस प्रकार हम योनिधारी का शरीर ब्रह्मांड है और उनमें रह रहे अनेकों चेतन कोष जीव अपनी वासना के अनुसार काम करते हैं। हर कोश में विराट् ब्रह्मांड की बात विज्ञान भी स्वीकार करता है।

यह इलेक्ट्रॉनिक प्रकाश की बौछार से ही देखे जा सकते हैं, इलेक्ट्रॉन विद्युद्‌णु होते हैं। मन भी एक प्रकार का सचेतन विद्युत् परमाणु है। योग ग्रंथों में उसे अग्नि स्फुलिंग कहा जाता है। उसे ध्यान की एकाग्रता के समय अत्यंत सूक्ष्म किंतु दिव्य प्रकाश कण के रूप में त्रिकुटी—दोनों भौहों के बीच आज्ञाचक्र नामक स्थान में देखा भी जाता है। यही कीट-पतंगों में भी मन और मन की विशेषताओं के होने का प्रमाण है, जो किसी भी विज्ञान से कम महत्त्व का नहीं।

जीवन और जगत् में जो कुछ भी महान् व महत्त्वपूर्ण है, वह स्थूल की पकड़ से बाहर और सूक्ष्म है। उसे जानने के लिये सूक्ष्म का विज्ञान ही समझना पड़ेगा तथा उसी विद्या के आगे बढ़ना पड़ेगा। प्राचीनकाल में भारतीय मनीषियों ने इस दिशा में बड़े प्रयत्न किये थे व शोध-अनुसंधानों द्वारा उस सूक्ष्म की शक्ति से लाभ उठाने की विधि विकसित की थी। देर-सबेर विज्ञान भी इसी दिशा में पहुँचकर असीम विश्व के कण-कण में भरी अनंत अपार क्षमता का सदुपयोग कर सकेगा।

❐ ❐

शक्ति अर्थात् आत्म चेतना का विज्ञान

प्राग (चेकोस्लोवाकिया) में एक ऐसी मशीन तैयार की गई है, जो धातु की पतली चादरों और जल्दी पिघलने वाली धातुओं को काटने या छेद करने के काम आती है। यह मशीन एक मिलीमीटर के सौवें भाग तक सही कटाई कर सकती है। इतने सूक्ष्म और सही (एक्युरेट) कटाई किसी तेज अस्त्र, चाकू या आरी से नहीं की जाती। यह कार्य इलेक्ट्रॉनों की किरणें फेंककर किया जाता है। इलेक्ट्रॉन की एक किरण की विद्युत् क्षमता ६०००० वोल्ट होती है। फिर यदि कई किरणों का समूह (बीम) प्रयुक्त किया जाये, तो उससे कितनी शक्ति प्रवाहित हो सकती है ?—इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

इलेक्ट्रॉन परमाणु का ऋण विद्युत् आवेश मात्र है। वह ०.०००००००१ मिलीमीटर व्यास के अति सूक्ष्म परमाणु का एक अंश मात्र है। लेकिन परमाणु का स्वयं भी कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं। इलेक्ट्रॉनिक माइक्रोस्कोप से केवल इसका प्रभाव देखा जा सकता है। परमाणु का सबसे आश्चर्यजनक जगत् तो उसकी चेतना, केंद्रक या नाभिक (न्यूक्लियस) में विद्यमान है। इस संबंध में हुई खोजें बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं और नाभिकीय विद्या (न्यूक्लियर साइंस) के नाम से जानी जाती है। उसका प्रारंभ १८९५ में प्रो० हेनरी बेक्वेरल ने किया और जेम्स चैडविक ने उसे विकसित किया। नाभिक में प्रसुप्त शक्ति को खोजा प्रो० एनारेको फर्मी ने। उन्होंने न्यूट्रान के अनेक रहस्यों का पता लगाकर सारे विज्ञान जगत् में तहलका मचाकर रख दिया।

नाभिकीय शक्ति का पता लगाकर प्रो० फर्मी को भी कहना पड़ा था—'हम छोटी-छोटी वस्तुओं में उलझे पड़े हैं। वस्तुतः संसार में महान् शक्तियाँ भी हैं, जिनसे संबंध बनाकर हम अपने आपको शक्तिशाली तथा और अधिक प्रसन्न बना सकते हैं।'

प्रकृति के कण-कण में अनंत शक्ति का भंडार भरा पड़ा है। वस्तुतः यह समस्त जगत् ही शक्ति का रूप है। परब्रह्म की सहचरी प्रकृति ही यदि शक्ति रूप न हुई तो और कौन होगा ? अपना सौरमंडल और विश्व ब्रह्मांड जिस असीम विस्तार-वैभव से भरे-पूरे हैं, उसी का प्रतिनिधित्व छोटे परमाणु करते हैं। बहुत समय पूर्व परमाणु को पदार्थ की सबसे छोटी इकाई माना जाता था। यह तो पीछे पता चला कि परमाणु भी एक सौरमंडल है, जिसका एक मूल केंद्र है—नाभिक या न्यूक्लियस। इसके इर्द-गिर्द इलेक्ट्रॉन ग्रहों की तरह परिक्रमा करते हैं। पीछे पता चला, नाभिक भी एकाकी नहीं है। वह प्रोटॉन और न्यूट्रॉन कणों से मिलकर बना है। बाद में यह भी पता चला कि वे भी दो नहीं रहे। परमाणु के भीतर १५० प्राथमिक कण गिने जा रहे हैं। इनके गुण, धर्म अभी बहुत स्वल्प मात्रा में ही जाने जा सके हैं। ये भी चिरस्थायी नहीं हैं, जन्मते, नई पीढ़ी उत्पन्न करते और मरते रहते हैं। इन कणों को विद्युत् आवेश की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है, पॉजिट्रॉन अर्थात् धनावेशी कण। इलेक्ट्रॉन अर्थात् ऋणावेशी कण।

परमाणु भौतिकी में ऊर्जा की सबसे छोटी इकाई 'इलेक्ट्रॉन वोल्ट' मानी जाती है। वह इतनी कम है जितनी किसी वस्तु को बहुत ही हलके हाथ से पेंसिल की नोंक छुआ देने भर से उत्पन्न होती है। प्राथमिक कण को इतनी ही ऊर्जा युक्त माना गया है। परमाणु का अस्तित्व इतना कम है कि उसे स्वाभाविक स्थिति में नहीं जाना जा सकता, उसका परिचय तभी मिलता है, जब उसे अतिरिक्त ऊर्जा देकर चंचल बनाया जाए। ऐसी चंचलता १००० से १०००० इलेक्ट्रॉन वोल्ट को बढ़ाने पर ही हम उन्हें अपने किसी काम में ला सकते हैं। उसका नाभिक विचलित करने के लिये १ लाख से लगाकर १०० लाख तक इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है।

विभिन्न पदार्थों में पाये जाने वाले कणों की संरचना अलग-अलग प्रकार की है। हाइड्रोजन परमाणु के नाभिक में केवल एक प्रोटॉन पाया जाता है, जबकि अन्यों में अनेक। यूरेनियम के नाभिक में तो ६२ प्रोटॉन पाये जाते हैं।

भौतिकी का मोटा और सर्वमान्य नियम यह है कि समान आवेश वाले कण एक दूसरे को दूर धकेलते हैं और असमान आवेश वाले एक दूसरे को पास खींचते हैं। विद्युत् और चुंबकीय बल का आधार यही है। नाभिक में धनावेशी प्रोटॉन होते हैं इसलिए स्वभावतः ऋणावेशी इलेक्ट्रॉन उनका चक्कर काटेंगे, पर आश्चर्य यह है कि नाभिक के भीतर सभी प्रोटॉन धनावेशी होते हैं और वे साथ-साथ निर्वाह करते हैं। इसमें तो भौतिकी का सर्वमान्य सिद्धांत ही उलट जाता है। इस समस्या का समाधान करते हुए वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नाभिक के क्षेत्र में विद्युत् चुंबकीय नियम निरस्त हो जाता है, उसके स्थान पर एक अन्य बल काम करता है—जिसका नाम 'नाभिकीय बल' रखा गया है। यह विद्युत् चुंबकीय बल की तुलना में १०० गुना अधिक सशक्त माना गया है। इसका प्रभाव अपने छोटे क्षेत्र तक ही सीमित रहता है। प्राथमिक कण न केवल अपनी छोटी कक्षा में वरन् धुरी पर भी घूमते हैं। अन्य ग्रहों की तरह ही उनका भी वही क्रम है।

नाभिक को तोड़ने से प्रचंड ऊर्जा प्राप्त होती है। इसके लिये कणों को अतिरिक्त ऊर्जा देनी पड़ती है। इसके लिये बहुमूल्य संयंत्र बनाये गये हैं, जिन्हें साइक्लोट्रॉन या सिंक्रोट्रॉन कहते हैं। अमेरिका के 'ब्रुक हेवन' के क्षेत्र में बने संयंत्र में ३० अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट की क्षमता है। रूस के डुबना क्षेत्र में बने संयंत्र में इससे भी ढाई गुनी अधिक क्षमता है।

आइन्स्टाइन द्वारा प्रादुर्भूत शक्ति महासूत्रों के आधार पर यदि एक पौंड पदार्थ को पूर्णतया शक्ति रूप में बदला जाय तो

उससे इतनी ऊर्जा प्राप्त होगी जितनी १४००००० टन कोयला जलाने से मिल सकती है। इसमें २५ हजार अश्व शक्ति का कोई इंजन कई सप्ताह सतत कार्य करता रह सकता है।

यह नई 'अणु महाशक्ति' निश्चय ही संसार की कायापलट करके रखेगी, इस तथ्य को सभी जानकार लोगों ने उसी समय जान लिया था। अमेरिका में 'अणु-वैज्ञानिकों' के संघ ने, जिनकी खोजों के आधार पर अणु-बम बनाया जा सका था, एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसका शीर्षक था—"अणु-बम के सच्चे अर्थ के संबंध में जनता के सामने एक वक्तव्य।" इसके मुख पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में लिखा था—'वन वर्ल्ड ऑर नन'। इसका आशय था कि या तो अब समस्त संसार एक बनकर रहेगा या संसार रहेगा ही नहीं।

यह नई प्रलयकारिणी शक्ति, जो विधि के विधानवश स्वार्थी मनुष्य के हाथों में आ गई है कितनी भयंकर है, उसका कुछ अनुमान उन विवरणों से किया जा सकता है, जो समय-समय पर अमेरिका और योरोप के पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। उससे विदित होता है कि दो करोड़ टी० एन० टी० (विस्फोटक) में जितनी शक्ति होती है उतनी ही शक्ति 'यू २३५' (एटम बम में काम आने वाला 'यूरेनियम' नाम का पदार्थ) के एक किलोग्राम में पाई जाती है। एक किलोग्राम यूरेनियम में 'थर्मोन्यूक्लियर' ५ करोड़ ७० लाख टी० एन० टी० के समान विस्फोट करने की प्रचंड शक्ति होती है। आप इसका अनुमान इससे कर सकते हैं कि इसका प्रभाव उतना ही होगा जितना एक लाख तोप के भयंकर गोलों का हो सकता है।

'जैसे-जैसे हाइड्रोजन बमों की भयंकरता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही उनको दूरदर्शी लक्ष्य पर कम-से-कम समय में फेंकने की विधि ढूँढ़ने में लोग अधिकाधिक प्रयत्नशील हो रहे हैं। अब से कुछ वर्ष पहले तक इस कार्य के मुख्य साधन जेट विमान थे, जो

४०० से १५०० मील प्रति घंटा तक चल सकते थे। यह गति आक्रमणकारियों को बहुत कम जान पड़ी। इस गति से अमेरिका से रूस पहुँचने में कम-से-कम तीन घंटा और चीन तक छह घंटे का समय लग जायेगा। इसलिये बम ले जाने वाले 'राकेट' बनाये गये, जिनमें बहुत शक्तिशाली रासायनिक द्रव्य भरे गये। इनकी गति घंटे में १५ से २५ हजार मील के लगभग है, पर इस अणु युग में लोगों को इससे भी संतोष नहीं हुआ और अणु-शक्ति की सामग्री द्वारा राकेट को चलाने की विधि सोची गई।

अब 'प्लाज्मा' और 'प्रोटॉन' (अणु-शक्ति संपन्न पदार्थों) के प्रयोगों से यह गति एक घंटे में ५० लाख मील तक बढ़ा ली गई है। यह गति बिजली की गति से कुछ ही कम है। यह नहीं कहा जा सकता कि अभी यह सिद्धांत की बात है अथवा व्यवहार में भी आ चुकी है, तो भी यह निश्चित है कि अमेरिका और रूस ऐसे राकेट बना चुके हैं, जो एक घंटे से कम समय में संसार के किसी भी भाग में पहुँच सकते हैं।

दूसरे महायुद्ध में हिटलर ने एक प्रकार के बी-१ और बी-२ नामक स्थायी 'राकेट' बनाकर उनके द्वारा अपने देश से ही इंग्लैंड पर बम वर्षा की थी। उससे १३ हजार व्यक्ति मरे और घायल हुए थे। इन अस्त्रों का निर्माता 'डॉ० बर्जर' आजकल अमेरिका चला गया है। वहाँ वह अमेरिका विरोधी साम्यवादी देशों को अणु-शक्ति द्वारा नष्ट करने की विधि परिपक्व करता रहता है। सन् १९६१ में उसने परामर्श दिया था कि अंतरिक्ष में उड़ने वाले यानों से सैकड़ों अणु-बम एक साथ छोड़ने की तैयारी करनी चाहिये।

परमाणु के उपरोक्त अंग-प्रत्यंगों में भी अब भेद-उपभेद निकलते चले आ रहे हैं। हाइपेरान परिवार के लैक्वडा कण, ऐंटा हाइपेरान, सिग्मा केस्केड, फोटॉन, न्यूट्रिनो आदि परमाणु के उपभेद इन दिनों विशेष शोध के विषय बने हुए हैं। इन मौलिक

तत्त्वों के अतिरिक्त लगभग वैसी ही विशेषताओं से युक्त नये तत्त्व कणों का कृत्रिम सम्मिश्रण तैयार किया जा रहा है। इन सब एटामिक कणों की आकृति और प्रकृति में अति आश्चर्यजनक नवीनतायें प्रकट होती चली जा रही हैं।

भावी शक्ति स्रोत के लिये इन दिनों परमाणु शक्ति पर निगाह लगी हुई है और उसका सुलभ उपयोग तलाश किया जा रहा है। आश्चर्य है कि परमाणु जैसी नगण्य इकाई—तुच्छ-सी वस्तु किस प्रकार शक्ति का प्रचंड स्रोत बनकर मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका संपादित कर सकेगी।

परमाणु में शक्ति उत्पन्न करने का क्रियाकलाप है—अणु-विखंडन। इसके लिए मूलतया यूरेनियम का प्रयोग किया जाता है। उस पर न्यूट्रॉनों का आघात करने से वह आसानी से टूट जाता है। उपलब्ध यूरेनियम का सर्वांश विखंडन के योग्य नहीं होता। उसमें ०.७१ प्रतिशत ही विखंडनीय अंश है, शेष तो अन्य वस्तुएँ ही उसमें मिली हुई हैं, जिन्हें उर्वर कहा जा सकता है। प्रयत्न यह हो रहा है कि इस उर्वर अंश को भी विखंडन में सहायता देने योग्य बनाया जाए। वैज्ञानिकों की भाषा में शुद्ध अंश को यूरेनियम—२३५ और अशुद्ध अंश को—२३८ कहा जाता है। इस २३८ अंश पर न्यूट्रानों का आघात करके उसे भी एक नये पदार्थ प्लूटोनियम—२३९ में परिणत कर लिया जाता है। इस प्रकार लगभग यह सारा ही मसाला घुमा-फिराकर परमाणु शक्ति उत्पन्न करने में प्रयुक्त हो सकने योग्य बना लिया जायेगा।

इस अणु शक्ति का यदि सद्भावनापूर्वक सदुपयोग किया जा सके तो समृद्धि का असीम उत्पादन हो सकता है और उससे मानवी सुख-शांति में अनेक गुनी वृद्धि हो सकती है। अणु शक्ति के रचनात्मक प्रयोग सोचे गये हैं और वे सहज ही कार्यान्वित भी हो सकते हैं, पर संभव तभी है जब सद्भावना का उत्पादन

अंतःकरण की प्रयोगशालाओं में भी साथ-साथ होता चले। अणु आयुधों की भयंकरता और उनके उत्पादन की विपुलता को देखते हुए आज समस्त मानव जाति महामरण के त्रास से बुरी तरह संत्रस्त हो रही है। वस्तुतः यह त्रास अणु शक्ति का नहीं मानवी दुर्भावना का है, जिसके आधार से अमृत भी विष बन जाता है। यदि पाशा पलट जाए, दुर्बुद्धि का स्थान सद्भावनायें ले लें और अणु शक्ति का उपयोग रचनात्मक कार्यों में होने लगे तो उसकी सुखद संभावनाओं का क्षेत्र भी अत्यंत व्यापक हो सकता है।

रेडियो सक्रियता की धातुओं में नियंत्रित एवं व्यवस्थित क्रम से सँजोकर आइसोटोप बनाये जाते हैं। इनका उपयोग चिकित्सा, उद्योग, हाइड्रोलॉजी आदि में होता है। थाइरॉइड ग्रंथियों की गड़बड़ी रोकने के लिये रेडियो आइसोटोपों का प्रयोग होता है। स्वर्ण निर्मित आइसोटोप कैंसर की चिकित्सा में काम आते हैं। रक्त में बढ़े हुए श्वेत कणों की चिकित्सा फास्फोरस आइसोटोपों से होती है।

फसल में लगे हुए कीड़े मारने, उत्पादन बढ़ाने, शरीर एवं जल परीक्षा जैसे कार्यों में इनका प्रयोग होता है। इनका निर्माण एक केबिन में यंत्रों की सहायता से किया जा सकता है।

सस्ती और प्रचुर परिमाण में विद्युत् शक्ति प्राप्त करने के लिये अब परमाणु शक्ति पर विज्ञान का ध्यान केंद्रित है। समुद्री पानी को पीने योग्य बनाने के लिए इसी शक्ति का बड़े पैमाने पर प्रयोग करना पड़ेगा। पानी में पाई जाने वाली हाइड्रोजन गैस को बिजली में बदल देने का—जलयान, वायुयान चलाने में—ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी जमीनों को समतल बनाने में जितनी प्रचंड शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा, उतनी मात्रा अणु शक्ति के अतिरिक्त और किसी माध्यम से नहीं मिल सकती।

अणु ऊर्जा से बिजली पैदा करने का कार्य अब अनेक विकसित देशों में हो रहा है। सन् १९७१ में संसार भर में अणु

शक्ति से बिजली उत्पन्न करने वाले १०२ रिएक्टर थे और १६ हजार मेगाटन बिजली उनसे पैदा हो रही थी। अब यह वृद्धि द्रुतगति से हो रही है। अनुमान है कि १९८० में ३ लाख मेगा टन बिजली इसी आधार पर पैदा होने लगेगी, जो संसार के समस्त विद्युत् उत्पादन की १५ प्रतिशत होगी। सन् २००० में आधी बिजली अणु शक्ति द्वारा उत्पन्न की जा रही होगी।

इन दिनों बिजली, भाप, तेल, गैस, कोयला आदि के माध्यम से ईंधन की जरूरत पूरी की जाती है और उन्हीं से विविध-विधि प्रयोजन सिद्ध किये जाते हैं। भविष्य में शक्ति का स्रोत अणु ऊर्जा बन सकती है और उससे वे कार्य हो सकते हैं, जो आज के साधनों से संभव नहीं। पर्वतों को चूर्ण-विचूर्ण करके भूमि को समतल, उपजाऊ और उपयोगी बनाया जा सकता है। समुद्र जल को मीठा किया जा सकता है।

अणु शक्ति की तरह ही मनुष्य की चेतना शक्ति है, जिसके अंतर्गत मन, बुद्धि, चित्त, आत्मबोध को अंतःकरणः के रूप में जाना जाता है। लगन, तत्परता, एकाग्रता, तन्मयता, निष्ठा, दृढ़ता, हिम्मत जैसे मानसिक गुण ऐसे हैं, जिनके आधार पर अणु शक्ति से भी करोड़ों गुनी अधिक प्रखर आत्मिक शक्ति को जगाया, बढ़ाया, रोका, सँभाला और प्रयुक्त किया जा सकता है।

अणु विज्ञान से बढ़कर आत्म-विज्ञान है। जड़ अणु में जब इतनी शक्ति विद्यमान है, तो जड़ की तुलना में चेतन का जो अनुपात है उसी हिसाब से आत्मशक्ति की महत्ता होनी चाहिये। अणु विज्ञानी अपनी उपलब्धियों पर गर्वान्वित है और उस सामर्थ्य को युद्ध अस्त्र से लेकर बिजली की कमी को पूरा करने जैसी योजनाओं में प्रयुक्त करने के लिये प्रयत्नशील हैं। आत्म-विज्ञानियों का कर्तव्य है कि वे उसी लगन और तत्परता के साथ आत्म शक्ति की महत्ता और उपयोगिता को इस प्रकार प्रमाणित करें कि सर्व साधारण को उसकी गरिमा समझा सकना संभव हो सके।

महामानव वस्तुतः एक जीवंत प्रयोग परीक्षण है। जिन्हें आत्म शक्ति के संग्रह और सदुपयोग कर सकना आया और उस प्रयोग के द्वारा प्रगतिपथ पर बढ़ चलने का लाभ उठाया। ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति और क्रिया शक्ति की त्रिवेणी को केंद्रित कर उससे उत्पन्न सामर्थ्य को रचनात्मक दिशा में प्रयुक्त कर सकने की विधि व्यवस्था को अध्यात्म विज्ञान कहते हैं। मध्यकाल में उसका स्वरूप अंध विश्वासी जनता और श्रद्धा शोषक साधना व्यवसायी लोगों द्वारा विकृत अवश्य हो गया और उससे अनास्था भी फैली, पर उससे मूल तथ्य पर कोई आँच नहीं आती। सत्य जहाँ था वहाँ का वहीं मौजूद है।

अणु-शक्ति की ऊर्जा बिखर जाने से हानि होती है। आत्म-शक्ति का रावण, कुंभकरण, भस्मासुर, हिरण्यकश्यपु की तरह दुरुपयोग होने का खतरा है। सिद्धि चमत्कारों के हास-परिहास में उसे कौतुक-कौतूहल के बाजारू स्तर पर रखकर उपहासास्पद भी बनाया जा सकता है, पर यदि उसे ठीक तरह समझा और सँभाला जाए—वैयक्तिक विकास और सामाजिक उत्कर्ष में उसका सुविज्ञ व्यक्तियों द्वारा उपयोग किया जाए तो उसकी गरिमा अणु शक्ति की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है।

आत्मिक प्रयोजनों के लिए भी इस सिद्धांत को अपनाकर योगी, सिद्ध, संतों ने अनेक लाभ उठाये हैं। स्वामी विवेकानंद ने बनारस जिले में गुजी नामक स्थान के निकट पवाहारी बाबा के बारे में लिखा है कि वे स्थूल अन्न ग्रहण नहीं करते थे। पव अर्थात् वायु, आहारी अर्थात् ग्रहण करने वाला पवाहारी अर्थात् जो केवल वायु का ही आहार ग्रहण करता था। वे काठियावाड़ के गिरनार पर्वत पर रहकर साधना करते थे। महीनों गुफा के अंदर बंद रहते थे। कई बार तो लोगों को संदेह होता था कि वे मर गये, पर जब वे निकाले जाते थे, तो उनके शरीर-स्वास्थ्य में कोई अंतर नहीं

आता था। अमेरिकी डॉक्टरों के एक दल ने एक बार उनकी जाँच करके बताया था—'आहार द्वारा जो तत्त्व शरीर ग्रहण करता है, वह सब तत्त्व उनके शरीर में है।' जबकि वे खाना खाते ही नहीं थे। श्री पवाहारी बाबा अपनी विचार व भावनाओं के चेतना-प्रवाह द्वारा हवा में पाये जाने वाले अन्न और खनिज के सभी तत्त्व खींच लेते थे और इसी का परिणाम था कि वे बिना खाये जीवित बने रहते थे। मानसिक चेतना द्वारा पदार्थों के हस्तांतरण-रूपांतरण के ऐसे सैकड़ों उदाहरण और चमत्कार हिमालय में रहने वाले कई योगियों में आज भी देखे जा सकते हैं। यह सब अंतःचेतना की शक्ति के विकास से ही संभव होता है। पदार्थ के नाभिक की शक्ति का साधारण अनुमान उसकी इलेक्ट्रॉनिक शक्ति से लगाते हैं, तो आत्म-चेतना की शक्ति का तो अनुमान ही नहीं किया जा सकता।

ऊर्जा कोई स्थूल पदार्थ नहीं है। ताप, विद्युत् और प्रकाश के सम्मिलित रूप को ही ऊर्जा कहते हैं। प्रकृति का प्रत्येक कण इस तरह एक शक्ति है, जबकि आत्मा उससे भी सूक्ष्म और उस पर नियंत्रण करने वाला है। इसलिये उसे ताप, विद्युत् या प्रकाश के लिये बाह्य साधन भी अपेक्षित नहीं। यदि हम आत्मा को प्राप्त कर सकें, तो इन तीनों आवश्यकताओं की पूर्ति हम अपने भीतर से ही कर सकते हैं। घोर अंधकार में भी आत्मदर्शी निर्भय चला जाता है, क्योंकि उसका प्रकाश उसे साथ देता है। जिस तरह हम दिन के प्रकाश में चलते हैं। योगी घने अंधकार में भी वैसे ही चलता है। विद्युत् एक ऐसी शक्ति है, जिससे शेर-चीते भी बस में किये जा सकते हैं। वह मनुष्य के पास हो, तो वह हथियारों से लैस सेना से भी क्यों डरेगा ? स्वामी रामतीर्थ हिमालय की तराइयों में घूमा करते थे, तब शेर-चीते भी उनके पास ऐसे आ जाते थे जैसे छोटे-छोटे बच्चे अपने पास खेला करते हैं। उनके शरीर में उतनी शक्ति होती है, जिससे प्रकृति के किसी भी परिवर्तन को आसानी

से सहन किया जा सके। सूर्य के मध्य भाग में ५०००००० डिग्री ताप होता है, पर वह इस शक्ति का २००००० वाँ हिस्सा ही उपयोग में लेता है। हमारी सामान्य दीखने वाली शक्तियाँ भी संचित सूर्य की ताप-शक्ति के समान हैं, पर उन्हें न जानने के कारण हम दीन-हीन स्थिति में पड़े रहते हैं।

एक पौंड यूरेनियम २३५ को तोड़ा जाता है, तो उससे उतनी ऊर्जा प्राप्त होती है, जितनी २०००० टी० एन० टी० के विस्फोट से। यह शक्ति इतनी अधिक होती है कि उससे १०० वाट पावर के दस हजार बल्ब पूरे वर्ष दिन-रात जलाये रखे जा सकते हैं। स्ट्रासमान ने सर्वप्रथम इसी शक्ति का उपयोग नागासाकी और हिरोशिमा को फूँकने में किया था। यह सब शक्ति तो आत्मिक चेतना या नाभिक के आश्रित कणों की शक्ति है। यदि नाभिक को तोड़ना किसी प्रकार संभव हो जाये, तो विश्व-प्रलय जैसी शक्ति उत्पन्न की जा सकती है—इसे आत्मदर्शी योगी जानतें हैं।

परमाणु का भार अचिन्त्य है और उसकी शक्ति अकूत। वैज्ञानिक बताते हैं कि यदि सारी पृथ्वी को पीटकर नाभिकीय घनत्व के बराबर लाया जाये, तो वह कुछ घन फुट में ही समा जायेगी। इसी से नाभिक की लघुता का अनुमान किया जा सकता है। किंतु इस घनीभूत की गई पृथ्वी का एक अंगूर के बराबर टुकड़ा काटें, तो उसका भार साढ़े सात करोड़ टन होगा। ऐसी मजबूत चादरों के ऊपर यदि इस टुकड़े को रख दिया जाये, जिन्हें छेदना संभव न हो, तो यही टुकड़ा पृथ्वी को भगाकर अंतरिक्ष में कहीं और लेकर भाग जायेगा। यदि उसे खुली मिट्टी पर रख दिया जाये, तो वह पृथ्वी को फाड़ता हुआ चला जायेगा और संभव है कि पृथ्वी को छेदकर वह स्वयं भी कहीं अंतरिक्ष में जाकर भटक जाये। परमाणु के अंदर इस नाभिक की शक्ति से वैज्ञानिक आश्चर्यचकित हैं।

यह सूक्त बताते हैं कि भारतीय योगियों की सूक्ष्म दृष्टि भी वैज्ञानिकों की तरह ही रही है और उन्होंने चेतन सत्ता के नाभिक

की जानकारी कर ली है। पदार्थ का परमाणु हमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सत्ता की शक्ति की अनुभूति तो कराता है, पर वह चेतन सत्ता की जानकारी नहीं देता। भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने भी ऐसे ही चेतना परमाणु और उसके विभु नाभिक का पता लगाया है। उसे चेतना, सत्ता, आत्मा या ईश्वरीय प्रकाश के रूप में माना है और उसकी विस्तृत खोज की है। उपलब्धियाँ दोनों की एक तरह की हैं। उपनिषद् उसे—'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा' (आत्मोपनिषद् ५।१) अणु से अणु और महान् से महान् बताती है। योग-वासिष्ठ में उसे इस प्रकार व्यक्त किया है—

अतीतः सर्वभावेभ्यो बालाग्रादप्यहं तनुः।
इति द्वितीयी मोक्षाय निश्चयो जायते सताम्।।

—५।१७।१५

परोऽणुः सकलातीतरूपोऽहं चेत्यहंकृतिः।

—५।७३।१०

सर्वस्मादयतिरिक्तोऽहं बालाग्र शतकल्पितः।

—४।३३।५१

मुक्ति दिलाने वाला यह आत्मा बाल की नोंक के सौवें भाग से भी सूक्ष्म परमाणु और दृश्य पदार्थों से विलग रहने वाला है। उसे जानने वाला सब कुछ जानता है।

देवी भागवत में आत्म-सत्ता की प्रार्थना—या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता—'हे भगवती, संपूर्ण भूत प्राणियों में शक्ति रूप से आप ही निवास करती है'—की गई है। उस शक्ति और आत्मचेतना के विज्ञान को भारतीय आचार्यों ने इतना अधिक विकसित किया कि भौतिक उपलब्धियों से जब उसकी तुलना करने लगते हैं, तो लगता है कि आज के वैज्ञानिकों ने जो कुछ पाया है, वह उस अथाह ज्ञान-सागर का जल-बिंदु मात्र है।

❐ ❐

असीम-अतुल-शक्ति सागर की एक बूँद

कहते हैं रूस का मास्को शहर संसार का सबसे बड़ा शहर है। दो लाख एकड़ क्षेत्र में बसे इस भव्य नगर में एक करोड़ से भी अधिक नागरिक निवास करते हैं। सन् १९८० के आँकड़ों के अनुसार प्रति वर्ष १ लाख २० हजार के हिसाब से नये फ्लैट बनते जा रहे हैं। प्रति दिन ३५० परिवारों को नये मकान दिये जाते हैं। पूरे शहर में ३० नाट्यघर, १०० सिनेमाघर, ८० उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं। इनमें ५ लाख छात्र शिक्षा पाते हैं। राजकीय लेनिनग्राड पुस्तकालय में २ करोड़ २० लाख पुस्तकें संग्रहीत हैं। इस विशालता में लंदन जैसे ढाई शहर और पेरिस जैसे ८ शहर समा सकते हैं।

हम जिस पृथ्वी में रहते हैं उसमें ऐसे-ऐसे ४ और विशाल शहर हैं। छोटों की तो कोई गणना ही नहीं। अकेले भारतवर्ष में ही ६ हजार के लगभग शहर हैं, दुनिया में तो उनकी संख्या लाखों होंगी। इस प्रकार गाँवों की संख्या और उनमें रहने वाले निवासी भी पृथ्वी में भरे पड़े हैं। १३००० किलोमीटर व्यास वाली पृथ्वी के सूखे भाग की इस व्यापक हलचल और कल्पना में न उतरने वाली विशालता को भला मनुष्य की एक-एक इंच से भी छोटी आँखें कहाँ देखती हैं ?

पृथ्वी के जिस भाग का वर्णन किया जा रहा है, जो सूखा और आबाद है, वह तो कुल १/४ हिस्सा है, ३/४ हिस्से में जल भरा हुआ है। समुद्र ही समुद्र है। आइये देखें, उसकी लंबाई-चौड़ाई कितनी है ?

हिंद महासागर का क्षेत्रफल २ करोड़ ८० लाख वर्गमील है, जबकि भारतवर्ष और पाकिस्तान दोनों का कुल मिलाकर १६२६९४८ ही वर्गमील क्षेत्रफल है। अफ्रीका के दक्षिणी सिरे से लेकर आस्ट्रेलिया के बीच तक इसकी लंबाई ६२०० मील है। उसमें ३० लाख खरब टन जलराशि, ८० हजार खरब टन नमक और

२० किलोवाट प्रति घंटे की विद्युत् शक्ति उसमें भरी हुई है। उसमें रहने वाले जीव-जंतुओं की संख्या तो मनुष्य शरीर में जीन्स की तरह असंख्य हैं, जबकि अभी ऐसे-ऐसे तीन और महासागर हैं। प्रशांत महासागर जिसकी औसत गहराई १४०५० फुट है और फैलाव ६३८००००० वर्गमील है। अटलांटिक महासागर १२८८० फीट गहरा और क्षेत्रफल ३१८३०००० वर्गमील है। आर्कटिक महासागर ४२०० फुट गहरा और ५४४०००० वर्गमील में फैला हुआ है। सूखी धरती और वह जल भाग—जो उसके अतिरिक्त है, वाली धरती की विशालता का अनुभव मनुष्य जैसा छोटा प्राणी कर भी कैसे कर सकता है ? वह तो मनुष्य को किसी का अभिशाप लग गया है, जो वह अपनी शक्ति का इतना अहंकार करता है। अन्यथा पृथ्वी की तुलना में ही वह इतना छोटा है जितना हिमालय पहाड़ की तुलना में चींटी के शरीर का सौवाँ भाग। १६ करोड़ ७० लाख वर्गमील की पृथ्वी और अधिक से अधिक ६ वर्ग फीट मनुष्य—यह तो नगण्य स्थिति हुई।

विशालता की इस माप में पृथ्वी का क्षेत्रफल कोई अंतिम दूरी नहीं है। उससे तो सूर्य ही कई हजार गुना बड़ा है। पृथ्वी का व्यास १३००० किलोमीटर है तो सूर्य १३,६०,००० किलोमीटर है। पर आप यह न समझें कि यह सूर्य ही विशालता में सरताज हो गया। वह अपना एक सौर परिवार भी रखता है, जिसमें ६ ग्रह बुध (मरकरी), शुक्र (वीनस), पृथ्वी (अर्थ), मंगल (मार्स), बृहस्पति (ज्यूपीटर), शनि (सेटर्न), आरुणी (यूरैनस), वरुण (नैपच्यून), यम (प्लूटो) और ४१ उपग्रह हैं। १५०० छोटे-छोटे ग्रह और भी हैं, जिन्हें अवांतर ग्रह या मध्यग्रह (एस्टोरोइड्स) कहते हैं। अंतरिक्ष कीट और अनेक पुच्छल तारे भी इस सौर मंडल में आते हैं। इस सौर मंडल का व्यास ११८,००,००,००,००,००० कि०मि० है। इनमें मंदाकिनी (स्पाइरल) नामक आकाश गंगा से प्रकाश मिलता है।

आइए देखें, सूर्य से बढ़कर कोई और बड़ा आकार आकाश में है या नहीं ? यदि उसकी खोज करना चाहते हैं तो रात में किसी एकांत में खड़े होकर आकाश की ओर देखें। आपको असंख्य टिमटिमाते हुए तारे दिखाई देंगे। जुगुनूँ जैसे आँख से भी छोटे दिखाई पड़ने वाले इन तारों में से कई कितने बड़े हैं, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। एंटारेस तारे का व्यास ६०,००,००,००० किलोमीटर, पृथ्वी से लगभग ५००० गुना बड़ा है। बैगनर तारा समूह में एक और ऐसा ही तारा देखने में आया है, जिसका नाम एप्सिलान और व्यास ४,००,००,००,००० किलामीटर है। अब तक विशालता की पैमाइश करते-करते हम जिस स्थान पर पहुँचे हैं, वहाँ खड़े होकर देखें और कल्पना करें कि पृथ्वी इतनी छोटी हो गई है कि उसका व्यास १/१०० मिलीमीटर अर्थात् बाल की चौड़ाई के बराबर है, तो आकाश में चमकने वाला सूर्य चने के दाने के बराबर होगा। एंटारेस तारा एक साधारण-सी कटोरी जितना बड़ा है। बैगनर तारा समूह का एप्सिलान ६ मंजिले मकान जितना लगेगा। सौर मंडल की स्थिति अधिक से अधिक एक फुटबाल के मैदान जैसी दिखाई देगी।

अभी तक जितना संसार ऊपर देख चुके, वह भी कोई संपूर्ण नहीं है। बैगनर तारा समूह की तरह के ८८ और तारा-समूह वैज्ञानिकों की दृष्टि में अब तक आ चुके हैं। अनुमान है कि यह सब ६०००००००००००००००० किलोमीटर व्यास वाली आकाश गंगा से प्रकाश लेते हैं। इस क्षेत्र को आकाश गंगा विश्व (गैलेक्सी) कहते हैं।

स्मरण रखना चाहिये कि यह जानकारी अंतिम नहीं है। इतने विस्तार को जान जाना मनुष्य के बस की बात नहीं है। लेकिन भगवान् ने जो विराट् सृष्टि दृश्य जगत् में बनाई है, अदृश्य जगत् में, सूक्ष्म रूप में भी वह ज्यों की त्यों विद्यमान है।

उसको खोजने, उसे पाने, उसमें भ्रमण का आनंद लेने के लिये अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। संख्या अनुमान मात्र है, अंतिम सत्य नहीं।

सूर्य-चंद्रमा आदि ग्रह-नक्षत्र जितने बड़े हैं, 'अमीबा' उतना ही छोटा ०.८ मिलीमीटर का जीव है। जीवाणु विज्ञान के अनुसार सूक्ष्म जीवाणु १/२५००० इंच का बाल की नोंक से भी छोटा होता है। बैक्टीरिया (जीवाणु) में भी अपनी तरह की चेतना गुण-कर्म-स्वभाव विद्यमान है और अपनी सृष्टि में वह संतुष्ट होने के साथ ही उसकी गति ऐसी है, जो एक सेकंड में पृथ्वी के ओर-छोर की यात्रा मजे में संपन्न कर सकता है। जो जितना छोटा उतना ही गतिमान।

यह छोटापन अभी अंतिम नहीं है। संसार के सब पदार्थ परमाणुओं से बने हैं। एक परमाणु का व्यास ०.०००००१ मिलीमीटर होता है और उसमें पाये जाने वाले इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन सब सूर्य-चंद्रमा की तरह शक्तिसंपन्न हैं। परमाणु विज्ञान में उसे कोई आश्चर्य नहीं माना जाता, जबकि परमाणु की शक्ति को नागासाकी और हिरोशिमा में अच्छी तरह देखा जा चुका है।

ब्रह्मांड की तुलना की तरह चेतन परमाणु इतना छोटा है कि यदि उसके नाभिक का व्यास १/१० मिलीमीटर मानें तो पूरा परमाणु एक भव्य इमारत जैसा लगेगा और बैक्टीरिया—जिसका व्यास ऊपर दिया है—इतना बड़ा लगेगा जितनी लंदन से बर्लिन की दूरी। अमीबा जो सबसे छोटा एक कोशीय जीव है इतना बड़ा होगा कि उसे पृथ्वी की गोलाई में दो बार आसानी से लपेटा जा सकेगा। उस तुलना में मनुष्य इतना बड़ा होगा कि पृथ्वी में खड़ा होकर बड़े आराम से सूर्य को पकड़ ले, तब पृथ्वी इतनी बड़ी होगी कि दोनों ध्रुवों के बीच की दूरी प्रकाश की गति से चलकर पूरी की जाये तो पूरे दो वर्ष लग जायें। एक ओर ब्रह्मांड की यह

विशालता एक ओर जीवन की यह लघुता दोनों पर विचार करते हैं तो ऋषियों की 'अण्णोरणीयान महतो महीयान' वह अणु से भी छोटा और ब्रह्मांड के समान विशाल है, की उक्ति को ही शिरोधार्य करना पड़ता है और तब विराट् के दर्शन के लिये उपाय एक ही रह जाता है कि हम अपनी लघुता को अंतःकरण की गहराई तक अनुभव करें।

परमाणु-संसार की खोज करते समय जो शक्ति कण पाये गये हैं, वह ब्रह्मांड के एक नक्शे की तरह हैं। केंद्रक (न्यूक्लियस) उसका मुख्य भाग है, उसके आस-पास शून्य (आकाश) है। उस पोले स्थान में इलेक्ट्रॉन चक्कर लगाते हैं। इनकी संख्या प्रत्येक पदार्थ के परमाणु में अलग-अलग तरह की होती है। चक्कर काटते हुए इलेक्ट्रॉन ठीक उसी प्रकार हैं जिस प्रकार सौर मंडल के ग्रह-उपग्रह। केंद्रक या नाभिक (न्यूक्लियस) सूर्य की तरह हैं, जो सेंट्रीफ्यूगल फोर्स के द्वारा इलेक्ट्रॉनों को नियमित किये रहता है। इलेक्ट्रॉन स्वयं सेंट्रीफ्यूगल फोर्स के द्वारा केंद्रक की ओर खिंचे रहते हैं। यह व्यवस्था भी ब्रह्मांड में गुरुत्वाकर्षण सिद्धांतों की तरह हैं। यह दृश्य और सौर मंडल भी ब्रह्मांड का एक परमाणु ही है, जिसका केंद्रक सूर्य और इलेक्ट्रॉन अनेक ग्रह-उपग्रह हैं।

लगता है सूर्य असीम शक्ति का भंडार है, पर वस्तुतः वह भी विराट् ब्रह्मांड के महा संचालक ब्रह्म सूर्य का एक नगण्य-सा घटक ही है। सूर्य अपनी शक्ति उसी प्रकार अपने सूत्र संचालक महा सूर्य से प्राप्त करता है जैसे कि अपनी पृथ्वी और सौर-मंडल के अधिष्ठाता अपने सूर्य से। जीव और ईश्वर की दूरी ही उसकी शक्ति को दुर्बल बनाती है। यदि यह दूरी घटती जाए तो निश्चित रूप से सामर्थ्य बढ़ेगी और स्थिति वह न रहेगी, जो आज कृमि-कीटकों जैसी दिखाई पड़ रही है।

ब्रह्मांड की दूरी का अनुमान नहीं किया जा सकता, पर परमाणु के नाभिक के अंदर के प्रोटॉनों की दूरी तो कुल १/२०,००,००,००,००,००० इंच होती है। यदि यह दूरी आधा इंच होती तो उन दोनों के बीच की दूरी १/४ इंच होने पर शक्ति सोलह गुनी होती १/२ इंच होने पर ६४ गुनी—तात्पर्य यह है कि ब्रह्मांड की जो शक्ति विस्तार में है, परमाणु के वही शक्ति प्रोटॉनों की समीपता में है। पति-पत्नी जितने प्रेम और आत्मीयता से रहते हैं, उनकी शक्ति उतनी ही अधिक होती है। इसका अनुमान इस व्याख्या से लगता है अर्थात् दो प्रोटॉनों के बीच में १/२०,००,००,००,००,००० इंच की दूरी के बीच इतनी शक्ति होगी, जो इस्पात की १० इंच मोटी चादर को भी काटकर रख देगी। जीव और ईश्वर की समीपता का भी ऐसा ही सत्परिणाम हो सकता है। इस समीपता के आधार पर सामान्य को असामान्य देखा जा सकता है।

ध्यान—मन की एकाग्रता द्वारा अपनी प्राणमय चेतना (नाभिकीय चेतना) को सूर्य या किसी अन्य चेतना के साथ जोड़ देने से दो तत्त्वों का मिलन ऐसे ही हो जाता है जैसे दो दीपकों की लौ मिलकर एक हो जाती है। व्यक्ति अपनी अहंता भूलकर जब किसी अन्य अहंता से जोड़ लेता है तो उसकी अनुभूतियाँ और शक्तियाँ भी वैसी ही—इष्टदेव जैसी ही हो जाती हैं। ध्यान की परिपक्वता को एक प्रकार का संलग्न ही कहना चाहिए। वैज्ञानिक भी मानते हैं कि वह शक्ति विस्फोट की शक्ति से भी अधिक प्रखर होती है। आत्म-चेतना का ब्राह्मी-चैतना से मिलकर ब्रह्म साक्षात्कार इसी सिद्धांत पर होता है।

सूर्य का तापक्रम ६०० डिग्री सेंटीग्रेड है, तो अंदर का अनुमानित ताप १५,००,००,००० डिग्री सेंटीग्रेड। १२ हजार अरब टन कोयला जलाने से जितनी गर्मी पैदा हो सकती है उतनी सूर्य एक

सेकंड में निकाल देता है। अनुमान है कि सूर्य का प्रत्येक वर्ग इंच क्षेत्र ६० अश्वों की शक्ति (हार्स पावर) के बराबर शक्ति उत्सर्जित करता है। उसके संपूर्ण ३३,६३,००,००,००,००,००,००० वर्ग मील क्षेत्र में शक्ति का अनुमान करना हो तो इस गुणनखंड को हल करना चाहिए—३३६,००,००,००,००,००,००० × १७६०^2 × ३^2 × १२^2 इतने हार्स पावर की शक्ति न होती तो यह जो इतनी विशाल पृथ्वी और विराट् सौर जगत् आँखों के सम्मुख प्रस्तुत है, वह अंधकार के गर्त में बिना किसी अस्तित्व के डूबा पड़ा होता।

इस प्रचंड क्षमता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि ६३०००००० मील लंबी और ८८० गज मोटी बर्फ की सिल्ली के ऊपर उसको केंद्रित (फोकस) कर दिया जाये तो सारी बर्फ एक सेकंड में गलकर बह निकलेगी। सूर्य के १ इंच में जितनी ऊर्जा व प्रकाश की कल्पना की गई है, वह ५ लाख मोमबत्तियों के एक साथ जलाने की शक्ति के बराबर होता है। यह सारी शक्ति एक साथ पृथ्वी पर फेंक दी जाती तो यहाँ की मिट्टी जलने लगती। जलने ही नहीं लगती, यह भी एक प्रकार का सूर्य पिंड हो जाती, जबकि सामान्य स्थिति में पृथ्वी को सूर्य-शक्ति का लगभग २२० करोड़वाँ हिस्सा ही मिलता है। ५ अरब से ऊपर की आबादी मनुष्यों की, १०० अरब आबादी पक्षियों की, १००० अरब आबादी अन्य जीव-जंतुओं की और पृथ्वी पर पाये जाने वाले विशाल वनस्पति जगत् तथा ऋतु संचालन का सारा कार्य उस २२० करोड़वें हिस्से जितनी शक्ति से सम्पन्न हो रहा है। पूरी शक्ति जो सौर-मंडल के करोड़ों ग्रह-उपग्रहों, क्षुद्र ग्रहों का नियमन करती है, प्रकाश और गर्मी देती है। अपने १६ करोड़ ६८ लाख महाशंख भार को २०० मील प्रति सेकंड की भयानक गति से २५ करोड़ वर्ष में पूरी होने वाली विराट् आकाश की परिक्रमा भी वह अपनी इसी शक्ति से पूरी करता है। उस संपूर्ण शक्ति और

सक्रियता को कूता जाना संभव नहीं है, उसे भावनाओं में केवल मात्र उतारा जाना संभव है।

सूर्य और पृथ्वी की तुलना नहीं हो सकती। किंतु अपने स्थान पर पृथ्वी और उस पर रहने वाले प्राणियों की सामर्थ्य को देखकर भी दाँतों तले ऊँगली दबानी पड़ती है और सोचना पड़ता है कि विश्व की प्रत्येक इकाई अपने आप में एक परिपूर्ण सूर्य है।

पृथ्वी के लोग भी इस तरह का विकास किया करते हैं। प्रतिवर्ष मनुष्य जाति ६०,००,००,००,००,००,००,००,००० फुट पौंड ऊर्जा आकाश में भेजती रहती है, जबकि हमारे जीवन को अपने समस्त ब्रह्मांड को गतिशील रखने के लिए सूर्य प्रति सेकंड चार सौ सेक्टीलियन अर्थात् दस अरब इक्कीस करोड़ किलोवाट शक्ति अपने सारे मंडल को बखेरता और गतिशील रखता है। परमाणु की इस महाशक्ति की सूर्य की महाशक्ति से उसी प्रकार तुलना की जा सकती है, जिस प्रकार परमाणु की रचना से सौर-मंडल की रचना की तुलना की जाती है। वस्तुतः परमाणु, सूर्य और समस्त ब्रह्मांड एक त्रिक के समान है। जो परमाणु में है वही सौर-मंडल में है। जिस प्रकार परमाणु अपने नाभिक के बिना नहीं रह सकता, प्रकृति और ब्रह्म की एकता का रहस्य भी यही है।

हाइड्रोजन परमाणु का एक इलेक्ट्रॉन अपने केंद्र के चारों ओर एक सेकंड में ६००० खरब चक्कर काटता है। सौर-मंडल के सदृश परमाणु के भीतर विद्युत् कण भयंकर गति से घूमते हैं, फिर भी उसके पेट में बड़ा सा आकाश भरा रहता है। परमाणुओं के गर्भ में चल रही भ्रमणशीलता के कारण ही इस संसार में विभिन्न हलचलें हो रही हैं। यदि वे सब रुक जाएँ तो आधा इंच धातु का वजन तीस लाख टन हो जायेगा और सर्वत्र अकल्पनीय जड़ता भरा भार दिखाई पड़ेगा।

हाइड्रोजन संसार का सबसे हल्का तत्त्व है और वह सारे विश्व में व्याप्त है। उसके एक अणु का विस्फोट कर दिया जाए तो उसकी शक्ति संसार के किसी भी तत्त्व की तुलना में अधिक होगी। जो जितना हल्का वह उतना ही आग्नेय, शक्तिशाली, सामर्थ्यवान् और विश्वव्यापी। यह कुछ अटपटा-सा लगता है, पर है ऐसा ही।

किसी गुब्बारे में ३०० पौंड हवा भरी जा सकती है तो उतने स्थान के लिए हाइड्रोजन १०० पौंड ही पर्याप्त होगा, उसी प्रकार जितने स्थान में एक औंस पानी या २/३ औंस हाइड्रोजन रहेगा, उतने स्थान को मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के प्रकाश अणुओं का १२२५वाँ भाग ही घेर लेगा। यदि प्रयत्न किया जाए तो इन अणुओं की सूक्ष्मतम अवस्था में पहुँचकर विराट् विश्वव्यापी आत्म-चेतना के रूप में अपने आपको विकसित और परिपूर्ण बनाया जा सकता है।

सर्गे सर्गे पृथग्रूपं सर्गान्तराण्यपि।
तेष्वप्यन्तस्थसर्गौघाः कदलीदल पीठवत्।।

—योगवासिष्ठ ४।८।१६-१७

आकाशे परमाण्वन्तर्द्रव्यादेरणुकेऽपि च।
जीवाणुर्यत्र तत्रेदं जगद्वेत्ति निजं वपुः।।

—योगवासिष्ठ ३।४४।३४-३५

अर्थात्—"जिस प्रकार केले के तने के अंदर एक के बाद एक परतें निकलती चली आती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक सृष्टि के भीतर नाना प्रकार के सृष्टि क्रम विद्यमान हैं। इस प्रकार एक के अंदर अनेक सृष्टियों का क्रम चलता है। संसार में व्याप्त चेतना के प्रत्येक परमाणु में जिस प्रकार स्वप्न लोक विद्यमान है उसी प्रकार जगत् में अनंत द्रव्य के अनंत परमाणुओं के भीतर अनेक प्रकार के जीव और उनके जगत् विद्यमान हैं!"

मन की चेतना में ही विश्व चेतना परिमाणु में उसका नाभिक ठीक इसी प्रकार है, जिस प्रकार समस्त सौर मंडल का अधिष्ठाता सूर्य। सूर्य को भी ज्वलनशील-चेतन किसी ऐसी नीहारिका से मिलता है, जिसके परिवार में अपने सूर्य जैसे एक नहीं अनेक सूर्य और उनके सौर-मंडल सम्मिलित हैं। यदि वह नीहारिका नष्ट हो जाये तो यह सारे सौर-मंडल पलक मारते नष्ट हो जावें। विराट् ब्रह्मांड में निर्माण और विनाश का यह क्रम एक विलक्षण गणितीय और मस्तिष्कीय प्रक्रिया के अंतर्गत चल रहा है। विज्ञान उस पर आश्चर्यचकित है।

विराट् ब्रह्मांड के इस नाभिक में यदि समष्टिगत चेतना ठीक इसी प्रकार की हो जिस प्रकार एक कोश (सेल) के नाभिक (न्यूक्लियस) में जीव चेतना, तो उसे आश्चर्य और अतिशयोक्ति न माना जाये, क्योंकि दोनों के रूप एक ही जैसे हैं और 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' की कल्पना को चरितार्थ करते हैं। प्रकाश की यह शोध हमें एक दिन निराकार ब्रह्म तक पहुँचा दे तो कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि विराट् का यह अध्ययन इन कल्पनाओं की ही सत्यता सिद्ध करता है। इसका प्रतिदान करने में तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने बहुत पहले ही सफलता प्राप्त करली थी।

यों परमात्मा को निराकार, निर्विकार, सर्वव्यापी सर्व शक्तिमान्, अव्यय, अविनाशी और सृष्टि का मूल उपादान कहा गया है; तथापि जब भी उसके तात्त्विक शरीर की कल्पना की जाती है, तो दिव्य और विराट् भुवन में प्रकाश भरने वाले स्त्रोत की ही कल्पना होती है। ब्रह्म और आत्मा के जिस स्वरूप की कल्पना भारतीय तत्त्वदर्शियों ने की, उसकी स्थावर कलाओं की शतशः सत्य सिद्धि तो ज्योतिर्विज्ञान ने कर दी। अब उसकी जंगम कलाओं की पुष्टि भी होने लगी है। यही जानकारियाँ एक दिन

'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' की पुष्टि और समर्थन करने लगे तो उसे आश्चर्यजनक नहीं माना जाना चाहिए।

विराट् और लघु-परमात्मा और आत्मा

ईश्वर और जीव में लघुता और महानता की दृष्टि से अकल्पनीय अंतर है। इतने पर भी अंशी के नाते वे सभी विशेषताएँ जीव में विद्यमान हैं जो उसके उद्गम स्रोत ईश्वर में होती हैं। प्रश्न केवल विकसित और अविकसित स्थिति का है। अविकसित जीव तुच्छ है, इस पर भी उसमें वे सभी संभावनाएँ मौजूद हैं जिनसे उसका विकास सहज ही विराट् रूप धारण कर सकता है। आग की छोटी-सी चिनगारी, मूलतः ब्रह्मांडव्यापी अग्नि तत्त्व का एक घटक है। जिसे अवसर मिले तो प्रचंड दावानल बनकर सुदूर क्षेत्रों को अपनी लपेट में ले सकती है। वह चाहे तो अपना चिनगारी स्वरूप समाप्त करके विश्वव्यापी अग्नि तत्त्व में विलीन हो सकती है। जीव जब चाहे अपनी छोटी स्थिति में रहे—संकल्प करे तो महान् बन जाए और उसकी उत्कंठा हो तो अपने उद्गम में विलीन होकर पूर्ण ब्रह्म भी बन सकता है। तुच्छता से महानता में विकसित होने में प्रधान बाधा उसकी संकल्प शक्ति की ही तो है। उसी की अभिवृद्धि के लिए साधना का मार्ग अपनाया जाता है।

विराट् और लघु की, परमात्मा और आत्मा की प्रत्यक्ष तुलना सूर्य और परमाणु से कर सकते हैं। सूर्य का विस्तार और शक्ति भंडार असीम है, पर नगण्य-सा दीखने वाला परमाणु भी तुच्छ नहीं है। अपनी छोटी स्थिति में उसकी शक्ति भी उतनी ही है जितनी कि विस्तृत स्थिति में विशालकाय सूर्य की। ब्रह्म और जीव का अनुपात भी इसी प्रकार है।

सूर्य की तुलना में परमाणु तुच्छ है, किंतु परमाणु के भीतर भी इतना ही बड़ा संसार विद्यमान है जितना सूर्य के घेरे में।

उसका सौर परिवार विशाल वट वृक्ष जिस बीज से अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित और बढ़ा हुआ है, वह आधे सेंटीमीटर व्यास से भी छोटा घटक रहेगा। इस बीज की चेतना ने जब विस्तार करना आरंभ किया तब तना, तने से डाल, डालों से पत्ते, फूल, फल, जड़ें आदि बढ़ते चले गये। मनुष्य शरीर की आकृति और विकास प्रक्रिया भी ठीक ऐसी ही है। वीर्य के एक छोटे से छोटे कोष (स्पर्म) को स्त्री के प्रजनन कोष ने धारण किया था। पीछे वही कोष जिसमें मनुष्य स्त्री या पुरुष के शरीर की सारी संभावनाएँ, आकृति-प्रकृति, रंग-रूप, ऊँचाई, नाक-नक्शा आदि सब कुछ विद्यमान था उसने जब बढ़ना प्रारंभ किया तो वह अंतरिक्ष की अनंत शक्तियों को खींच-खींचकर शरीर रूप में विकसित होता चला गया। एक सेंटीमीटर स्थान में कई अरब कोष आ सकते थे, जो उसी सूक्ष्मतम कोष से ५ फुट ६ इंच का मोटा शरीर दिखाई देने लगता है।

गर्भ के भीतर रहने तक तो यह लघुता याद रहती है, किंतु बाहर की हवा लगते ही जीवन का मूलभूत आधार भूल जाता है और मनुष्य अपने आपको स्थूल पदार्थों का पिंड मात्र मानकर मनुष्य जीवन जैसी बहुमूल्य ईश्वरीय विरासत को गँवा बैठता है। हम यदि छोटे से छोटे अणु में भी जीवन की अनुभूति कर सके होते तो जन चेतना के प्रति हमारा दृष्टिकोण आज की अपेक्षा कुछ भिन्न ही होता।

धरती पर जीवनोपयोगी परिस्थितियों का आधार जिन रासायनिक हलचलों और आणविक गतिविधियों पर निर्भर है, वे अंतरिक्ष से आने वाली रेडियो तरंगों पर अवलंबित हैं। शक्ति के स्रोत उन्हीं में है। विविध-विधि हलचलों की अधिष्ठात्री इन्हीं को कहना चाहिए। हमारा परिवार, हमारा शरीर, हमारा अस्तित्व सब कुछ प्रकारांतर से इन रेडियो तरंगों पर निर्भर है, जिन्हें हम आत्मा

की तरह भले ही नहीं जानते, पर निश्चित रूप से अवलंबित उन्हीं पर है। जीवन लगता भर अपना है, पर उसमें समाविष्ट प्राण इसी अदृश्य सत्ता पर निर्भर है, जिन्हें विज्ञान की भाषा में रेडियो तरंग पुंज कहते हैं।

यह रेडियो तरंग पुंज अदृश्य सत्ता के घटक मात्र हैं। इस प्रकार के अनेकानेक शक्तिपुंजों को ब्रह्मांडीय चेतना कहा जाता है। ब्रह्मांडीय चेतना की इन दिनों वैज्ञानिक क्षेत्रों में बहुत चर्चा है। उसे परा प्रकृति की स्वीकृति माना जाना चाहिए।

परा और अपरा प्रकृति

प्रकृति के दो स्तर हैं। एक 'परा' दूसरा 'अपरा'। अपरा वह है जिसे पंच भौतिक कह सकते हैं। इंद्रिय चेतना से जो अनुभव की जा सकती है अथवा यंत्र-उपकरणों की सहायता से जो प्रत्यक्ष हो सकती है। भौतिक विज्ञान का कार्यक्षेत्र यहीं तक सीमित है। कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिक इतने को ही सब कुछ मानते थे। चेतना की व्याख्या आणविक एवं कंपनपरक हलचलों की ही प्रतिक्रिया है। विज्ञान द्वारा अब परा प्रकृति के अस्तित्व को भी स्वीकार किया जाने लगा है। इस नये कार्य क्षेत्र को सूक्ष्म जगत् कहा जाने लगा है। इसकी हलचलें आणविक गतिविधियाँ नहीं कही जा सकतीं और न ताप, प्रकाश, शब्द के कंपनों से उसकी कोई तुलना है। उसे समष्टि मस्तिष्क माना गया है। बल्ब में जलने वाली बिजली—अंतरिक्ष में व्यापक विद्युत् शक्ति की एक चिनगारी समझी जाती थी और दोनों का परस्पर सघन संबंध स्वीकार किया जाता था। अब व्यष्टि मस्तिष्क को एक चिनगारी और समष्टि मस्तिष्क को व्यापक अग्नि के समकक्ष माना गया है। व्यक्तिगत मस्तिष्क की अपनी सत्ता और क्षमता है, किंतु वह सर्वथा स्वतंत्र नहीं है, वरन् वह समष्टि मस्तिष्क का एक अंग है, जिसे इन दिनों वैज्ञानिक क्षेत्र में 'ब्रह्मांडीय चेतना' नाम दिया गया

है। व्यक्ति समाज का एक अविच्छिन्न अंग है। एकाकी रहने लगे तो भी वह समष्टि से पृथक् होने का दावा नहीं कर सकता। उसे अब तक जो ज्ञान, अनुभव, संस्कार, कौशल आदि मिला है—शरीर पोषण हुआ है—वह सब समाज का ही अनुदान है। एकाकी निर्वाह में भी आखिर कुछ उपकरण तो साथ रखे ही गये हैं। माला, कमंडल, कोपीन, कुल्हाड़ी जैसे साधनों के बिना तो गुफा में रहने वाले भी काम नहीं चला पाते। अग्नि का आविष्कार उस एकाकी व्यक्ति ने स्वयं नहीं किया है। इस प्रकार एकांतवासी कहलाने वाले का भूतकालीन और वर्तमान क्रियाकलाप समाज संबद्ध रहा। आगे भी अंतरिक्ष में चलने वाली असंख्य व्यक्तियों की असंख्य विचार तरंगें अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करेंगी और वह स्वयं दूसरों को अपनी मनःतरंगों से प्रभावित करेगा, यह भी सामाजिक आदान-प्रदान हुआ।

व्यक्ति का शरीर निर्वाह एवं विकास समाज पर आश्रित है और अविच्छिन्न रूप से संबद्ध है। ठीक इसी प्रकार 'व्यक्ति मस्तिष्क' स्वतंत्र दीखने पर भी वह 'समष्टि मस्तिष्क' का एक अंग है।

'समूह मस्तिष्क' के अस्तित्व और उसके 'व्यक्ति मस्तिष्क' के साथ आदान-प्रदान की बात अब दिन-दिन अधिक स्पष्ट होती और अधिक प्रामाणिक बनती चली जा रही है। मनुष्य का अचेतन मन अत्यधिक अद्‌भुत और रहस्यमय होने की बात तथ्यरूप में स्वीकार करली गई है। चेतन मन की बुद्धि क्षमता उसकी तुलना में अति तुच्छ है। इसी प्रकार अंतरिक्ष में मनुष्यों के छोड़े हुए विचार और उनके आदान-प्रदान की जानकारी भी ऐसी ही उथली और कम महत्त्व की समझी जाने लगी है और रहस्यमय उस प्रवाह को माना जाने लगा है, जो समष्टि की अचेतन-चेतना से संबद्ध है।

मानवी चेतना मोटेतौर से शरीर निर्वाह एवं अहंता की तुष्टि तथा विस्मृति में संलग्न हलचल मात्र दृष्टिगोचर होती है। उसका प्रयोजन शरीर को सुखी तथा सक्रिय बनाये रहना भर प्रतीत होता है। लगता है शरीर मुख्य है और उसकी तृप्ति, पुष्टि, सुरक्षा एवं प्रगति के लिए सरंजाम जुटाने भर के लिए उसका सृजन एवं उदय हुआ है। आमतौर से ऐसा ही समझा जाता है। उपयोग भी इसी स्तर पर होता है। मस्तिष्क का शरीर सुख के लिए जितना अधिक उपयोग हो सके उतनी ही उसकी सफलता एवं सार्थकता मानी जाती है।

गहराई में उतरने पर बात कुछ दूसरी ही दृष्टिगोचर होती है। मस्तिष्क-चेतना केन्द्र [illegible]वास का केंद्रीय शक्ति संस्थान है। यहाँ ब्रह्मांडीय चेतना के साथ जीव चेतना का मिलन संगम होता है और उस आदान-प्रदान के आधार पर प्राणि जगत् को अनेकानेक सुविधाएँ एवं संवेदनाएँ उपलब्ध होती हैं। यह मस्तिष्कीय केंद्र इतना अधिक शक्तिशाली है कि उसके माध्यम से पिंड और ब्रह्मांड की एकता का अनुभव एवं लाभ आश्चर्यजनक मात्रा में उपलब्ध किया जा सकता है।

हमें सामान्य जानकारियाँ इंद्रिय शक्ति के आधार पर मिलती हैं, पर यदि प्रसुप्त अतींद्रिय शक्ति को जाग्रत् किया जा सके तो व्यापक ब्रह्मांड सत्ता के साथ अपना संपर्क जुड़ सकता है और ससीम से असीम स्थिति तक पहुँचा जा सकता है।

इस विश्व में जड़ और चेतना की द्विधा अपने-अपने नियत प्रयोजनों में संलग्न है। उनका वैभव भी महासमुद्र की तरह है, जिसके किनारे पर बैठकर मनुष्य ने सीप और घोंघे ही ढूँढ़े हैं। प्रकृत परमाणुओं में और जीवाणु घटकों में जो सामर्थ्य तथा चेतना विद्यमान है, उसका बहुत छोटा अंश ही जानना, हथियाना संभव हो सका है। सब कुछ पाना खींचतान से—छीना-झपटी से नहीं

उसमें घुल जाने से ही संभव हो सकता है। समुद्र के पानी को कोई घड़ा कितनी मात्रा में अपने में भर सकेगा ? संपूर्ण समुद्र के साथ एकता स्थापित करनी हो तो घड़े को अपना जल समुद्र में मिला देना पड़ेगा तभी तुच्छता की सुविस्तृत स्थिति में अनुभव कर सकना संभव होगा।

योग साधना का प्रयोजन अपनी ससीमता को असीमता के साथ जोड़ देना है। इस प्रयोजन में जितनी ही सफलता मिलती जाती है उतनी ही मात्रा में मनुष्य उस वैभव पर आधिपत्य जमाता जाता है, जिसके प्रभाव को हम जड़-चेतन जगत् में अपने चारों और फैला हुआ देखते हैं। सीमाबद्ध स्थिति में हम तुच्छ और दरिद्र होते हैं, पर असीम के साथ जुड़ जाने पर महानता प्राप्त करने में कोई कमी नहीं रह जाती। संपन्नता से—भरे-पूरे भंडार में हमारी भागीदारी जितनी अधिक होती है, उतनी ही अपनी स्थिति भी विभूतिमयी बनती चली जाती है। सिद्ध पुरुषों में देखी गई विशिष्ट क्षमतायें और कुछ नहीं विराट् के साथ उनकी घनिष्ठता का आरंभिक उपहार भर है। बढ़ी-चढ़ी स्थिति तो ऐसी बन जाती है, जिसमें आत्मा और परमात्मा के बीच कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं रह जाता, दोनों समतुल्य ही दीखते हैं।

❐ ❐

शरीर संस्थान में भी सूक्ष्म ही प्रखर

भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में सूक्ष्म शक्ति की प्रखरता काम करती देखी जा सकती है। जीवन की गरिमा और सफलता उसके स्थूल वैभव में सन्निहित नहीं है जैसी कि आम लोगों द्वारा समझी जाती है। उसका वर्चस्व सूक्ष्म चिंतन द्वारा किये गये आत्म निरीक्षण और आत्म-निर्माण में सन्निहित है। सद्‌गुणों की संपदा वह स्वर्ण भंडार है जिसके छोटे-छोटे टुकड़ों के बदले प्रचुर मात्रा में मनोरंजक सामग्री खरीदी जा सकती है।

उदाहरण के लिए शरीर संचालन को ही लेते हैं। लगता है हाथ, पैर, सिर आदि के सहारे ही जीवन यात्रा चल रही है। ऊपरी परत उखेड़ने पर पता लगता है कि रक्त, मांस, हड्डी आदि धातुएँ प्रधान हैं, पीछे हृदय, फेफड़े, आमाशय, गुर्दे आदि के कल-पुर्जे परस्पर मिल-जुलकर जिस तरह काम कर रहे हैं, उस तालमेल को देखकर अचंभा होता है। आगे चलकर कोटि-कोटि जीवाणुओं की विचित्र गतिविधियाँ देखकर, उसे जादू महल मानना पड़ता है।

मोटेतौर पर यह समझा जाता है कि आहार से रक्त बनता है और रक्त की शक्ति से शरीर में गर्मी तथा शक्ति बनी रहती है, पर बारीकी से देखने पर विदित होता है कि आहार को रक्त में परिणत करने वाली एक प्रणाली और भी है और वही अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण भी है। स्वसंचालित नाड़ी संस्थान तथा चेतन-अचेतन द्वारा उनके नियंत्रण-संचालन की बात भी अब मोटी बात ही रह गई है। मस्तिष्क अचेतन नाड़ी संस्थान को दिशा प्रेरणा और सामर्थ्य देने वाले केंद्र और भी सूक्ष्म हैं और उनके निरीक्षण से पता चला है कि शक्ति और अशक्ति के मूल आधार और भी अधिक गहराई में छिपे हुए हैं और वे पिछले दिनों प्रायः अविज्ञात ही बने रहे हैं। घी-दूध जैसे मोटा बनाने वाले पदार्थों से

वंचित व्यक्ति भी जब मोटे होते चले जाते हैं और चिकनाई तथा पौष्टिक आहार में डूबे रहने वाले भी जब दुबले-पतले रहते हैं तो आहार का स्वास्थ्य पर पड़ने वाला प्रभाव गलत सिद्ध होता है। इसी प्रकार शरीर में चुस्ती, थकान, सर्दी, गर्मी का बाहुल्य, कद का बहुत छोटा या बहुत बड़ा होना, मंद और तीव्र बुद्धि, हिम्मत और भीरुता, सौंदर्य और कुरूपता जैसी बातें जब स्वास्थ्य के सामान्य नियमों का उल्लंघन करते हुए घटने या बढ़ने लगती हैं, तब भी आश्चर्य होता है कि समुचित सावधानी बरतने पर भी यह अकस्मात् ही क्या और क्यों होने लगता है ?

यह आधार वे ग्रंथियाँ हैं जो 'हारमोन' नामक रसों को प्रवाहित करती रहती हैं और वह रस रक्त में मिलकर संजीवन का काम करते हैं। इन रसों के उत्पादन या प्रवाह में तनिक भी व्यतिक्रम या अवरोध उत्पन्न हो जाए तो शरीर का ही नहीं, मन का भी सारा ढाँचा लड़खड़ाने लगता है।

साधारणतया आहार-विहार का प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने वाले निरोग रहते हैं और असंयम बरतने वाले—अखाद्य खाने वाले बीमार पड़ते हैं। बीमारियों के कारण रोग-कीटाणुओं के रूप में—ऋतु प्रभाव या धातुओं, तत्त्वों के हेर-फेर में ढूँढ़े जाते हैं और उसी आधार पर चिकित्सा की जाती है, पर कई बार इन सब मान्यताओं को झुठलाते हुए ऐसे कारण उपस्थित हो जाते हैं कि अप्रत्याशित रूप से शरीर के किन्हीं अवयवों का या प्रवृत्तियों का एकाएक घटना-बढ़ना शुरू हो जाता है। कारण ढूँढ़ते हैं तो समझ में नहीं आता, अंधेरे में ढेला फेंकने की तरह कुछ उपचार किया जाता है तो उसका कुछ परिणाम नहीं निकलता।

ऐसी परिस्थितियाँ प्रायः हारमोन ग्रंथियों में गड़बड़ी आ जाने के कारण उत्पन्न होती हैं। शरीर के सामान्य अवयवों की संरचना

और उनकी कार्यपद्धति का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता आया है इसलिये रोगों के कारण और निवारण के संबंध में काफी प्रगति भी हुई है, पर यह अंतःस्रावी ग्रंथियों की आश्चर्यचकित करने वाली हरकतें जब से सामने आई हैं तबसे चिकित्सा-विज्ञानी स्तब्ध रह गये हैं, प्रत्यक्षतः शरीरगत क्रियाकलाप से इनका कोई सीधा उपयोग नहीं है। वे किसी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति नहीं करतीं, चुपचाप एक कोने में पड़ी रहती हैं और वहीं से तनिक सा स्राव बहा देती हैं। वह स्राव भी पाचन अंगों द्वारा नहीं, सीधा रक्त से जा मिलता है और अपना जादू जैसा प्रभाव छोड़ता है।

हारमोन, शरीर और मन पर कितने ही प्रकार के प्रभाव डालते और परिवर्तन करते हैं। उनमें से एक परिवर्तन कामवासना का मानसिक जागरण और यौन अंगों की प्रजनन क्षमता भी सम्मिलित है।

छोटी उम्र के लड़की और लड़के लगभग एक जैसे लगते हैं। कपड़ों से, बालों से उनकी भिन्नता पहचानी जा सकती है अन्यथा वे साथ-साथ हँसते, खेलते, खाते हैं, कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं पड़ता, पर जब बारह वर्ष से आयु ऊपर उठती है तो दोनों में काफी अंतर अनायास ही उत्पन्न होने लगता है। लड़के की आवाज भारी होने लगती है। होठों के बाल काले होने लगते हैं और कोमल अंग कठोर होने लगते हैं। लड़कियाँ शरमाने लगती हैं, उनके कुछ अंग में उभार आने लगते हैं और नये किस्म की इच्छायें तथा कामनायें मन में घुमड़ने लगती हैं।

यह 'हारमोन' स्रावों की करतूत है। वे समय-समय पर ऐसे उठते-जगते हैं मानो किसी घड़ी में अलार्म लगाकर रख दिया हो अथवा टाइम बम को समय के काँटे के साथ फिट करके रखा हो। यौवन उभार के संबंध में इन्हीं के द्वारा सारा खेल रचा जाता है। अन्य सारा शरीर अपने ढंग से ठीक काम करता रहे, पर यदि

इन हारमोन ग्रंथियों का स्राव न्यून हो तो यौवन अंग ही विकसित न होंगे और यदि किसी प्रकार विकसित हो भी जाएँ तो उनमें वासना का उभार नहीं होगा, न कामेच्छा जाग्रत् होगी, न उस क्रिया में रुचि होगी। संतानोत्पादन तो होगा ही कैसे ?

साधारणतया कामोत्तेजना का प्रसंग १५-१६ वर्ष की आयु से आरंभ होकर ६० वर्ष पर जाकर लगभग समाप्त हो जाता है। स्त्रियों का मासिक धर्म बंद हो जाने पर लगभग पचास वर्ष की आयु में उनकी वासनात्मक शारीरिक क्षमता और मानसिक आकांक्षा दोनों ही समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार ६० वर्ष पर पहुँचते-पहुँचते पुरुष की इंद्रियाँ एवं आकांक्षायें भी शिथिल और समाप्त हो जाती हैं। यह सामान्य क्रम है, पर कई बार हारमोनों की प्रबलता इस संदर्भ में आश्चर्यजनक अपवाद प्रस्तुत करती है। बहुत छोटी आयु के बच्चे भी न केवल पूर्ण मैथुन में वरन् सफल प्रजनन में भी समर्थ देखे गये हैं। उसी प्रकार शताधिक आयु हो जाने पर भी वृद्ध व्यक्तियों में इस प्रकार की युवावस्था जैसी परिपूर्ण क्षमता पाई गई है।

लिंग भेद से संबंधित हारमोनों में गड़बड़ी पड़ जाय तो नारी को मूँछें निकल सकती हैं। पुरुष बिना मूँछ का हो सकता है तथा दोनों की प्रवृत्तियाँ भिन्न लिंग जैसी हो सकती हैं। नारी पुरुष की तरह कठोर व्यवहार करने वाली और नर, जनखों जैसे स्त्री स्वभाव का हो सकता है। यौन आकांक्षायें भी विपरीत वर्ग जैसे हो सकती है। इतना ही नहीं कई बार तो इन हारमोनों का उत्पात ऐसा हो सकता है कि प्रजनन अंगों की बनावट ही बदल जाय। ऐसे अनेक आपरेशनों के समाचार समय-समय पर सुनने को मिलते रहते हैं, जिनमें नर से नारी की और नारी से नर की जननेंद्रियों का विकास हुआ है और फिर शल्य क्रिया द्वारा उसे तब तक के जीवन की अपेक्षा भिन्न लिंग का घोषित किया गया।

इसी नई परिस्थिति के अनुसार उन्होंने साथी ढूँढे, विवाह किये और गृहस्थ बसाये।

लिंग परिवर्तन की घटनाओं में यही होता है। मनुष्य की आकांक्षायें और अभिरुचियाँ जिधर गतिशील होती हैं उसी तरह की लिंग मनोभूमि बनती चली जाती है। कोई नारी यदि नर के प्रति अत्यधिक आसक्त होती है, उसी के सान्निध्य एवं चिंतन में निरत रहती है तो उसका अंतःकरण उसी ढाँचे में ढलता और तादात्म्य होता चला जायगा। कालांतर में वह आकांक्षा उसे स्वयं नर के रूप में परिणत कर सकती है। इसी प्रकार कोई नर यदि नारी के चिंतन और सान्निध्य में अतिशय रुचि लेता है तो उसकी चेतना नारी वर्ग में परिणत होने लगेगी और वह उस प्रवृत्ति की तीव्रता के अनुरूप देर में या जल्दी लिंग परिवर्तन कर लेगा। इसमें एकाध जन्म की देरी भी हो सकती है। लिंग की ऐसी घटनाओं में जिनमें नारी नर के रूप में या नर नारी के रूप में परिणत किये गये, उनमें शारीरिक या मानसिक कारण नहीं होते, वरन् अंतःचेतना का गहन स्तर—कारण शरीर ही इस प्रकार की पृष्ठभूमि विनिर्मित करता है। नपुंसक वर्ग भी ऐसी ही स्थिति है। इसे परिवर्तन का मध्य स्थल कह सकते हैं।

समलिंगी आकर्षण से लेकर सहवास तक की अनेक घटनायें देखने-सुनने में आती-रहती हैं। इसमें भी वह अतृप्त आंतरिक आकांक्षा ही उभरती है। दो नारी यदि नर रूप में विकसित हो रही होंगी तो उनमें नर के प्रति आकर्षण की विद्यमान मात्रा स्त्री रति की अपेक्षा पुरुष रति में रस एवं तृप्ति अनुभव करेगी और उनमें परस्पर घनिष्ठता बढ़ती जायगी। इसी प्रकार दो नर यदि नारी रूप में विकसित हुए हैं तो उनका पूर्वाभ्यास नारी के प्रति आकर्षण बनाये रहेगा और वे दो नारियाँ परस्पर मिलन का अधिक आनंद अनुभव करेंगी। यह विपर्यय दोनों कारणों से हो

सकता है। विकसित होती हुई आकांक्षा भी अपनी अतृप्ति का समाधान कर सकती है। इसी प्रकार विकास आगे चल पड़ा है। शरीर बदल गये हैं, पर पूर्व मनोवृत्ति में भिन्न लिंग के संस्कार अभी भी प्रबल हैं तो वे भी बार-बार वैसी ही उमंगें उठाकर समलिंगी संपर्क में अधिक आकर्षण अनुभव कर सकते हैं।

गत वर्ष योरोप में ऐसे विवाहों को अदालत द्वारा भी मान्यता मिल चुकी है, जिनमें पति-पत्नी दोनों या तो नर ही थे या नारी ही नारी। यों ऐसे प्रसंग निजी और अप्रकट रूप से चलते तो रहते हैं, पर पिछली न्यायिक परंपरायें तोड़कर जिन्हें कानूनी मान्यता मिली हो ऐसे विवाह गत वर्ष ही सर्व साधारण के सामने आये हैं।

कामवासना को ही लें। पुराने जमाने में भस्में तथा रसायनें खिलाकर मृत या स्वल्प कामेच्छा को पुनर्जागृत करने का प्रयत्न किया जाता था। यह प्रयास भी नशे से उत्पन्न क्षणिक उत्तेजना जैसी ही सिद्ध हुई। जब से हारमोन प्रक्रिया का ज्ञान हुआ है तब से यौन ग्रंथियों के रसों को पहुँचाने से लेकर बंदर एवं कुत्ते की ग्रंथियों का आरोपण करने तक का क्रम बराबर चल रहा है। आरंभ में उससे तत्काल लाभ दीखता है, पर वह बाहर का आरोपण देर तक नहीं ठहरता। भयंकर आपरेशनों के समय रोगी को अन्य व्यक्ति का रक्त दिया जाता है, वह शरीर में ३-४ दिन से अधिक नहीं ठहरता। शरीर यदि नया रक्त स्वयं बनाने लगे तो ही फिर आगे की गाड़ी चलती है। इसी प्रकार आरोपित स्राव अथवा रस ग्रंथियाँ तत्काल ही लाभ दिखावेंगी, यदि उस उत्तेजना से अपनी ग्रंथियाँ जाग्रत् होकर स्वतः काम करने लगें तो ही कुछ काम चलेगा अन्यथा वह बाहरी आरोपण की फुलझड़ी थोड़ी देर चमक दिखाकर बुझ जायगी। अब तक के बाहरी आरोपण के सारे प्रयास निष्फल हो गये हैं। कुछ सप्ताह का चमत्कार देख लेने के अतिरिक्त उनसे कोई प्रयोजन सिद्ध न हुआ।

सन् १८७६ में एक वृद्ध डॉक्टर ब्राउन सेक्वार्ड ने घोषणा की कि उसने कुत्ते का वृषण रस अपने शरीर में पहुँचाकर पुनः यौवन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करली है। ७२ वर्षीय इस डॉक्टर की ओर अनेक चिकित्साशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने उसकी घोषणा को सच पाया, लेकिन यह सफलता स्थिर न रह सकी। वे कुछ ही दिन बाद पुनः पुरानी स्थिति में आ गये।

इंग्लैंड के डॉक्टर मूरे ने थायरेक्सिन का प्रयोग एक थायरॉइड विकारग्रस्त रोगिणी पर किया। दवा का अवसर बहुत थोड़े समय तक रहता था। कुछ वर्ष जीवित रखने के लिए एक-एक करके ८७० भेड़ों की ग्रंथियाँ निचोड़कर उसे आये दिन लगानी पड़ती थीं। इस पर धक्का-मुक्की करके ही उसकी गाड़ी कुछ दिन और आगे धकेली जा सकी।

शरीरशास्त्रियों ने इस अद्‌भुत निरंकुश को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया तो उनकी पकड़ में अंतःस्रावी ग्रंथियाँ आ गईं। इनमें छह प्रधान हैं। कई उपप्रधान हैं, इनमें तनिक तनिक से रस स्रवित होते रहते हैं और वे रेंगकर रक्त में जा मिलते हैं। इन्हें हारमोन कहते हैं। इनके भी कई भेद-उपभेद ढूँढ़े गये हैं। इतना सब होते हुए भी यह आश्चर्य का ही विषय है कि इनमें आखिर ऐसा क्या जादू है, जो शरीर की सामान्य व्यवस्था में इतनी भयानक उलट-पुलट वे करके रख देते हैं। स्वास्थ्य के साधारण नियमोपनियम एक ओर और इनकी मनमानी एक ओर तथा इस रस्साकसी में सामान्य व्यवस्था लड़खड़ा जाती है और इन हारमोनों की मनमानी जीतती है। इन स्रावों का रासायनिक विश्लेषण करने पर वे सामान्य स्तर के ही सिद्ध होते हैं। उनमें कुछ ऐसी अनहोनी मिश्रित नहीं दीखती जिससे ऐसे उथल-पुथल भरे परिणाम होने चाहिए। पर 'चाहिए' को ताक पर रखकर जो 'होता' है सामने आता है, तो बुद्धि चकरा जाती है और इस अंधाधुंधी में हाथ पर हाथ डालकर बैठना पड़ता है।

अंतःस्रावों की भेद उपभेद की दृष्टि से संख्या भी बढ़ती जा रही है, पर साधारणतया उनमें से छह प्रमुख हैं (१) पीयूष ग्रंथि (२) कंठ ग्रंथि (३) अधिवृक्क ग्रंथि (४) अग्न्याशय ग्रंथि (५) अंडाशय ग्रंथि (६) वृषण ग्रंथि।

शरीर का आकार सामान्य रखने या उसे असाधारण रूप से घटा या बढ़ा देने का—एकाएक भारी हेर-फेर उत्पन्न कर देने का कारण मस्तिष्क स्थित पीयूष ग्रंथि ही है। उसमें जहाँ बाल की नोंक की बराबर अंतर पड़ा कि शरीर में वैसी ही विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के सर्जन डॉ० हार्वे कुशिंग ने एक पिल्ले की पीयूष ग्रंथि निकाल दी। बस फिर वह बढ़ा ही नहीं। सदा के लिये पिल्ला ही बना रह गया। चूहों के बच्चे पीयूष ग्रंथि रहित किये गये तो वे बढ़िया से बढ़िया भोजन देने पर भी उतने ही छोटे बने रहे, न उनका कद बढ़ा और न वजन में रत्ती भर अंतर आया। बूढ़े होने तक वे बच्चे ही बने रहे। कोलंबिया विश्वविद्यालय के सर्जन फिलिप स्मिथ ने एक चूहे की पीयूष ग्रंथि दूसरे में फिट कर दी तो दूने हारमोन बढ़ने से वह चूहा असाधारण रूप से बढ़ा और अपने साथियों की तुलना में तीन गुना दैत्य जैसा हो गया।

हारमोन ग्रंथियों में अंतर आने से शरीर का विकास असाधारण रूप से रुक सकता है और आश्चर्यजनक रीति से बढ़ सकता है। २½ इंच ऊँचा आदमी टामथंब और २४ इंच ऊँची स्त्री लेवोनिया लोगों की दृष्टि में आश्चर्यजनक थे, पर यह हारमोन ग्रंथियों की एक मामूली सी उलट-पुलट मात्र है। टामथंब जन्म के समय ६ पौंड २ औंस था, पर न जाने क्या हुआ कि आशा के विपरीत वह जहाँ का तहाँ रह गया। बाजीगरों का धंधा करता था। उसने अपने ही जैसी बौनी लड़की भी ढूँढ़ निकाली। उससे शादी करके अपने व्यवसाय को और भी अधिक आकर्षक बनाया। उनका यह पलड़ा दूसरी तरफ झुक जाए तो फिर लंबाई ही लंबाई

बढ़ती चली जाएगी। ८ फुट ११ इंच ऊँचा आदमी राबर्ट बाडली ताड़ के पेड़ जैसा लगता था। पलामू (बिहार) में साढ़े सात फुट ऊँचा तिलवर नामक व्यक्ति अभी कुछ दिन पहले तक लोगों का ध्यान अपनी अनौखी लंबाई की ओर खींचता रहता था।

रूस का शासक जार पीटर स्वयं लंबे कद का था, उसे लंबे आदमी बहुत पसंद थे। उसका एक प्रिय लंबा सार्जेंट जब मरा तो जार ने उसके अस्थि-पिंजर को कुन्सत्कैयर के संग्रहालय में सुरक्षित रखने का आदेश दिया। तब से वह रखा ही हुआ था। अब दो सौ वर्ष बाद एक्स किरणों की सहायता से उस कंकाल की असाधारण लंबाई का कारण खोजा गया है तो उसमें पीयूष ग्रंथि से अधिक स्राव होना ही कारण पाया गया है।

सिकंदरिया में एक ऐसा बौना मनुष्य था, जिसकी ऊँचाई केवल १७ इंच थी। उसका नाम था अलीपियस। उसे वहाँ के अमीर जैंबिलकस ने अपने मेहमानों के मनोरंजन के लिए अपने पास रखा था और उसे कभी-कभी तोते के पिंजड़े में बंद करके इधर-उधर ले जाया करता था।

ओहियो (संयुक्त राज्य) के सिनसिनाटी नगर में एक लड़की थी कुमारी फैनी माइल्स। सन् १८८० में जन्मी। इसके और सब अंग तो साधारण थे, पर पैरों के पंजे असाधारण रूप से लंबे थे। उनकी लंबाई दो-दो फुट थी। उसकी इस विचित्रता से सभी डरते थे और कोई उससे विवाह करने के लिए तैयार न हुआ।

डेट्रोएट, मिशीगन (अमेरिका) का एक नागरिक अल्फ्रेड लेंजवेन एक अनोखी शारीरिक विशेषता से संपन्न था। जिस प्रकार दूसरे लोग नथुनों से साँस लेते हैं, वह आँखों से ले सकता था और छोड़ सकता था। परीक्षा के तौर पर वह जलता दीपक और मोमबत्तियाँ मुँह और नाक बंद करके मात्र आँखों से देखकर बुझा देता था।

फेडपैटजेल की आवाज इतनी बुलंद थी कि जब वे गरजकर बोलते तो उनकी कही हुई बात तीन मील तक सुनी जा सकती थी।

हिप्पोक्रेट्स ने इस तरह की विपरीत वर्गीय कुछ घटनायें देखी थीं और उनका कारण समझने का प्रयत्न किया था। चिकित्सक प्लिनी ने एक ऐसे सात वर्ष के लड़के का वर्णन लिखा है, जो लैंगिक दृष्टि से पूर्ण विकसित हो गया था।

८ जनवरी सन् १६१० को दो चीनी बच्चों ने सामान्य बालकों को जन्म दिया। जिसमें माता की उम्र ८ वर्ष और पिता की ६ वर्ष की थी। संसार में यह सबसे छोटे माता-पिता हैं। अमीय फुकेन प्रांत का यह कृषक परिवार 'साद' नाम से पुकारा जाता है। इस परिवार में ऐसे ही बाल प्रजनन के और भी उदाहरण होते हैं।

कलावार (अफ्रीका) में भी कुछ समय पूर्व ऐसी ही घटना घटित हुई थी। वहाँ एक्क्री नामक एक नीग्रो की आठ वर्षीय पत्नी ने आठ वर्ष चार मास की आयु में ही प्रसव किया और एक बालिका को जन्म दिया, आश्चर्य यह और देखिये कि वह बच्ची भी अपनी माँ की तरह आठ वर्ष की आयु में ही माँ बन गई। इस प्रकार उमेजी को १७ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते दादी बनने का अवसर प्राप्त हो गया।

सूडान में अभी कुछ वर्ष पूर्व नौ वर्ष की लड़की माँ बनी है, उसका पति दस वर्ष का है। यह समाचार कुछ ही दिन पूर्व प्रायः सभी समाचार पत्रों में छपा था।

जोरा आगा नामक टर्की के एक दीर्घजीवी वृद्ध पुरुष की आयु १६२७ में १५३ वर्ष की थी। उस समय उसने अपना ग्यारहवाँ विवाह किया था। उससे पूर्व १० स्त्रियों और २७ बच्चों को वह अपने हाथों कब्र में सुला चुका था। उसके जीवित बच्चे ७० से ऊपर थे।

अंतःस्रावी ग्रंथि में गड़बड़ी

गले के पास थायरॉइड नामक ग्रंथि है। इससे थाइरॉक्सिन नामक हारमोन निकलता और रक्त में सम्मिलित होता रहता है। यदि इसकी कमी हो जाए तो पाचन क्रिया बिगड़ जाती है, मस्तिष्क कुंद हो जाता है, त्वचा और केशों में रूक्षता छाई रहती है, होंठ और पलक लटक जाते हैं, शरीर थुलथुला हो जाता है, उँगली गाड़ने से गड्ढा बनने लगता है, थकान छाई रहती है, ठंड अधिक सताती है, यदि यह ग्रंथि बढ़ जाए तो गला मोटा होने लगता है, 'घेंघें' की शिकायत खड़ी हो जाती है, आहार-विहार सब कुछ ठीक रहने पर भी यह ग्रंथि सूखने या बढ़ने लग सकती है।

इस महत्त्वपूर्ण किंतु अनियंत्रित ग्रंथि में गड़बड़ी क्यों पड़ती है ? यह खोजते हुए शरीरशास्त्री सिर्फ इतना जान सके हैं कि 'आयोडीन' की कमी पड़ने से ऐसा होता है। वे कहते हैं; भोजन में कम से कम २० माइक्रो ग्राम आयोडिन होनी चाहिए। समुद्री जल, समुद्री नमक, समुद्री घास-पात, समुद्री मछली में वे आयोडिन का बाहुल्य बताते हैं। यह सब करने पर भी बहुत बार निराश ही होना पड़ता है। श्वांस नली के ऊपरी भाग को ढके हुए, गहरे लाल रंग की दो पत्तियों वाली, तितलीनुमा यह थायराइड ग्रंथि तब भी काबू में नहीं आती। अन्वेषकों ने इस ग्रंथि के गह्वर में 'कोलाइड' नामक एक पीला प्रोटीन और ढूँढ़ निकाला और अनुमान लगाया कि शायद यही थाइरॉक्सिन को प्रभावित करता हो, पर यह निष्कर्ष भी गलत ही निकाला।

थायरॉइड में सिकुड़न आ जाने से चमड़ी शुष्क रहने लगती है, बाल झड़ने लगते हैं और रूखे हो जाते हैं, उनकी चिकनाई और मुलायमी नष्ट होती जाती है। उभरी हुई आँखें, लटके हुए होठ, याददास्त की कमजोरी, मोटी चमड़ी, मांस में उँगली दबाने से गड्ढा जैसा बन जाना जैसी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। शरीर में

बेहद थकान, मस्तिष्क में जड़ता, याददास्त घटना, उदासी, किसी भी काम में मन न लगना जैसी शिकायतें अकारण ही पैदा होने लगें, तो उसका कारण थायरॉइड से प्रभावित होने वाले हारमोन थायरॉक्सिन की कमी पड़ना समझना चाहिए। इस कमी के कारण शरीर में ऑक्सीजन सोखने की शक्ति घट जाती है। स्वच्छ हवा मिलने पर भी वह उसका लाभ नहीं उठा पाता। ऑक्सीजन की कमी से उपरोक्त उपद्रव खड़े होते और बढ़ते हैं।

इसी कमी को पूरा करने के लिए दूसरे प्राणियों की थायरॉइड का सत्व प्रवेश कराया गया, उसका तालमेल भी नहीं बैठा। कृत्रिम थायरॉक्सिन बनाने के लिए डॉ० ई० सी० कैंडाल और हैरिंगटन बार्गन नामक अंग्रेज ने भारी प्रयत्न किया और कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तथा आयोडीन के सम्मिश्रण से उसे बना भी लिया। देखने में समतुल्य होने पर भी वह उस कमी को पूरी न कर सका। आयोडिन नमक में मिलाकर खिलाने का भी प्रयोग बहुत चला, पर वह भी कुछ स्थायी प्रभाव न दिखा सका।

अधिक मात्रा में यह हारमोन निकलने लगें तो भी मुसीबत खड़ी होती है। इंजन तेज हो जाता है और बढ़ी हुई गर्मी हर अवयव की गति तेज कर देती है। धड़कन बढ़ जाती है—पसीना फूटता है, उत्तेजना रहती है, चिड़चिड़ापन बढ़ता है और रक्त चाप बढ़ा हुआ दिखाई देता है। गले की मोटाई बढ़ने लगती है। रेडियम, एक्स किरणें, रेडियो सक्रिय आयोडीन आदि उपचारों का भी इन दिनों इस पर प्रयोग परीक्षण चल रहा है, थायरॉइड के भीतर पाई जाने वाली पैराथायरॉइड नन्हीं सी ग्रंथियों की भी तलाश की जा रही है, पर रहस्य का पर्दा तो भी उठता नहीं।

डॉ० इमले से कनाडा के रसायनशास्त्री कोलीय तक से लेकर थायरॉइड को नियंत्रित करने का सिलसिला अद्यावधि चल

ही रहा है। कैल्शियम देने से शायद कुछ काम चले यह भी परख लिया गया है।

भोजन का ग्रास पेट में पहुँचते ही वहाँ उसका परिवर्तन होने लगता है। स्टार्च तथा शुगर दोनों अंश ग्लूकोज (शर्करा) में बदल जाते हैं। इस ग्लूकोज का कुछ अंश तत्काल खून में चला जाता है और शरीर को गर्मी तथा शक्ति देने के काम आता है। शेष ग्लाइकोजन के रूप में जिगर में जाकर जमा हो जाता है और आवश्यकतानुसार उसका उपयोग होता रहता है।

पर जिन्हें मधुमेह—डायबिटीज की शिकायत हो जाती है, उनकी भोजन से बनी हुई शर्करा शरीर में काम नहीं आती, वरन् रक्त में उसकी मात्रा बढ़ती चली जाती है, उधर शर्करा अभाव के कारण शरीर क्षतिग्रस्त होता चला जाता है। यह गड़बड़ी अग्न्याशय नामक ग्रंथि से निकलने वाले इन्सुलीन नामक हारमोन की कमी पड़ जाने के कारण उत्पन्न होती है।

फ्रेडरिक वैटिंग ने इस संबंध में भारी शोध की। लैगर हैंस की द्वीपिकाओं में बनने वाले इस रसायन को पहले आइजलीटिन कहा जाता था, पीछे इसे इन्सुलिन कहा जाने लगा। इसी शोध पर वैटिंग तथा मैकलियाड को नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

आधी लीटर रक्त में एक औंस के साठवें भाग के बराबर शर्करा रहती है। इसे एक प्रकार का ईंधन कहना चाहिए, जिसके आधार पर कोशिकाओं तथा मांस पेशियों को एवं समस्त अवयवों को गरम और गतिशील रखने का अवसर मिलता है, इस कार्य में इन्सुलिन की सहायता एड्रिनेलिन भी करता है।

गुर्दों के पास दो छोटी ग्रंथियाँ हैं, इन्हें एड्रिनल या अधिवृक्क कहते हैं। दोनों का मिलाकर कुल वजन लगभग १२ ग्राम बैठता है। वे लगभग दो इंच लंबी और एक इंच चौड़ी होती हैं। इनके दो भाग होते हैं। भीतरी भाग बाहरी भाग से खोल

की तरह घिरा होता है और बाहरी भाग छाल (कॉर्टेक्स) कहलाता है। भीतर के गूदे को 'मेड्यूला' कहते हैं। कोई विपत्ति की घड़ी या तात्कालिक उत्तेजना का अवसर आने पर यह ग्रंथियाँ सक्रिय हो उठती हैं और उससे इतनी शक्ति मिलती है, जो सामान्य शरीर बल की अपेक्षा कई गुनी होती है।

यह छोटी सी गाँठें उपेक्षित सी एक कोने में पड़ी थीं, इनका कार्य ठीक तरह समझ में नहीं आता था, पीछे वे बड़ी महत्त्वपूर्ण मालूम हुईं। उनके द्वारा स्रवित होने वाला रस ऐड्रीनेलिन कहा जाने लगा।

भय या खतरे के समय पाचन यंत्र ठप्प हो जाते हैं और उस ओर लगी हुई शक्ति का सामना करने के लिए असाधारण शक्ति उत्पन्न करना आरंभ कर देती है। दिल जोरों से धड़कता है, श्वास तेज चलता है, रक्त की चाल बढ़ जाती है, ताकि उस शक्ति के आधार पर शरीर उस संकट का सामना करने के लिए जोरदार प्रयत्न करने में, लड़ने या भागने में समर्थ हो सके। श्वास नली चौड़ी हो जाती है, ताकि अधिक हवा फेंफड़ों में भरी जा सके। रक्त में शर्करा बढ़ जाती है, ताकि शक्ति के लिए आवश्यक ईंधन जुट सके। खतरे का सामना करने के लिए इस प्रकार हर अवयव अपनी क्षमता को तीव्र करता है। मांसपेशियाँ तन जाती हैं। समस्त शरीर उत्तेजित दीखता है। चेहरा लाल हो जाने के रूप में इस बढ़ी हुई शक्ति को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

जहाँ तक खोज का विषय है उन अंतःस्रावी ग्रंथियों का—उनसे प्रवाहित होने वाले रस का स्वरूपों समझ लिया गया है और उनका रासायनिक विश्लेषण कर लिया गया है। पर उनकी असाधारण महत्ता और असाधारण हरकत का कुछ कारण नहीं जाना जा सका। इतना ही नहीं उनके नियंत्रण का भी कोई उपाय हाथ नहीं लगा है। यह मोटा और भोंड़ा तरीका है कि उसी स्तर

के रसायन बाहर से पहुँचाकर उन स्रावों की कमी-बेशी के परिणामों को रोकने का प्रयत्न किया जाए। इतना ही बन पड़ा है, सो किया भी गया है। अन्य जीवों से प्राप्त करके अथवा रासायनिक पद्धति से विनिर्मित करके उन रसों को व्यक्ति के शरीर में पहुँचाकर यह प्रयत्न किया जाता है कि विकृतियों पर नियंत्रण किया जाय। उसका लाभ होता तो है, पर रहता क्षणिक ही है। भीतर का उपार्जन बंद हो जाए तो बाहर से पहुँचाई मदद कब तक काम देगी ? इसी प्रकार जमीन फोड़कर कोई स्रोत निकल रहा हो तो उसे एक जगह से बंद करने पर दूसरे छेद से फटेगा। यह तो तात्कालिक या क्षणिक उपचार हुआ। बात तब बनती है जब उत्पादन के केंद्र स्वतः ही अपने स्रावों को घटा या बढ़ा लें। उपचार का उद्देश्य तो तभी पूरा हो सकता है। पर यह स्थिति हाथ आ नहीं रही है। शरीरशास्त्रियों के सारे प्रयत्न अब तक निष्फल ही रहे हैं और आगे भी इनकी अद्भुत संरचना और कार्य पद्धति को देखते हुए अधिक आशा नहीं बँधती।

ओछी भावनाएँ अंतरात्मा में जमी हों और छोटा बनाने वालों पर बड़प्पन के संस्कार जम जायें तो शरीर को ही नहीं, मस्तिष्क को भी बड़ा बनाने वाले हारमोन उत्पन्न होंगे। इंद्रिय भोगों में आसक्त अंतःभूमिका अपनी तृप्ति के लिए कामोत्तेजक अंतःस्रावों की मात्रा बढ़ाती है। विवेक जाग्रत् हो और विषय भोगों की निरर्थकता एवं उनकी हानियों को गहराई से समझ लिया जाए तो उन हारमोनों का प्रवाह सहज ही कुंठित हो जाता है। इसी प्रकार वियोग, विश्वासघात, अपमान जैसे आघात अंतःकरण की गहराई तक चोट पहुँचा दें तो युवावस्था में भी भले चंगे हारमोन स्रोत सूख सकते हैं, इसके विपरीत यदि रसिकता की लहरें लहराती रहें तो वृद्धावस्था में भी वे यथावत् गतिशील रह सकते हैं। जन्मांतरों

की रसानुभूति बाल्यावस्था में भी प्रबल होकर उस स्तर की उत्तेजना समय से पूर्व ही उत्पन्न कर सकती है।

काम क्रीड़ा शरीर द्वारा होती है, कामेच्छा की मन में उत्पत्ति होती है। पर इन हारमोनों की जटिल प्रक्रिया न शरीर से प्रभावित होती है, और न मन से। उसका सीधा संबंध मनुष्य की अंतर चेतना से है, इसे आत्मिक स्तर कह सकते हैं। जीवात्मा में जमे काम बीज जिस स्तर के होते हैं तदनुरूप शरीर और मन का ढाँचा ढलता और बनता-बिगड़ता है। हारमोनों को भी प्रेरणा, उत्तेजना वहीं से मिलती है।

पीनियल-ग्रंथि भ्रूमध्य भाग में है। जहाँ देवताओं का तीसरा नेत्र बताया जाता है। प्राचीन काल में ऐसे प्राणी भी थे, जिसके मस्तिष्क में सचमुच एक अतिरिक्त तीसरी आँख और भी होती थी, जिससे वे बिना गर्दन मोड़े पीछे के दृश्य भी देख सकें। अभी भी अफ्रीका में कुछ ऐसी छिपकलियाँ देखी गई हैं, जिनके सिर पर कॉर्निया, रेटिना लेन्सयुक्त पूरी तीसरी आँख होती है।

धान के दाने की बराबर धूसर रंग की इस छोटी-सी ग्रंथि में आश्चर्य ही आश्चर्य भरे पड़े हैं। जिन चूहों में दूसरे चूहों की पीनियल ग्रंथि का रस भरा गया, वे साधारण समय की अपेक्षा आधे दिनों में ही यौन रूप में विकसित हो गये और जल्दी बच्चे पैदा करने लगे। समय से पूर्व उनके अन्य अंग भी विकसित हो गये, पर इस विकास में जल्दी भर रही, मजबूती नहीं आयी। काम दहन की शिवजी की कथा की इस हारमोन से संगति अवश्य बैठती है, पर अंतःकरण की रुझान जिस स्तर की होगी—शरीर और मन को ढालने के लिए हारमोनों का प्रवाह उसी दिशा में बहने लगा।

हारमोन स्रावों की घटोत्तरी-बढ़ोत्तरी का आहार-विहार से कोई सीधा संबंध नहीं है। इसी प्रकार उनका सचेतन मन से भी कोई संबंध अभी तक स्थापित नहीं किया जा सका। इसी प्रकार

आनुवंशिकी विज्ञान में—पैतृक जीनों से भी उनकी कुछ संगति नहीं बैठती, अचेतन मन से कोई संग्रहीत संस्कार उन्हें प्रभावित करता हो, ऐसी भी तुक किसी प्रकार नहीं बैठती। फिर अकारण इन अंतःस्रावों की अकस्मात् क्यों घटोत्तरी-बढ़ोत्तरी आरंभ हो जाती है ? इसका यथार्थ कारण ढूँढ़ना हो तो हमें अधिक गहराई तक जाना पड़ेगा। इसके आधार मनुष्य की सूक्ष्मतम चेतना से संबंधित हैं।

मनुष्य की सूक्ष्म चेतना से संबद्ध

मनुष्य तीन भागों में विभक्त है। एक भाग वह जो भौतिक पदार्थों का, पंचतत्त्वों का बना है, जिसे स्थूल शरीर कहते हैं। जिस पर आहार-विहार का प्रभाव पड़ता है और जिसका उपचार औषधियों अथवा उपकरणों से किया जाता है। दूसरा भाग वह जिसे मन, मस्तिष्क अथवा अचेतन कहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर है। चिंतन एवं वातावरण का इन पर प्रभाव पड़ता है। तर्क, विवेक, विचार विनिमय, भावोत्तेजन जैसे उपायों से इसे विकसित किया जाता है। नशीले तथा दूसरे प्रकार के रसायन भी इसे प्रभावित करते हैं। आहार का एवं क्रियाकलाप का भी इस पर असर पड़ता है। मनोविज्ञान, मस्तिष्कीय विद्या आदि के माध्यम से इसे परिष्कृत संतुलित किया जाता है।

तीसरा भाग इन दोनों से ऊपर है, जिसे कारण शरीर—लिंग शरीर—हृदय, अंतःकरण, आत्म-चेतना आदि नामों से पुकारते हैं। इसका संबंध मनुष्य की आस्था, श्रद्धा, आकांक्षा, भावना एवं अहंता से है। उस स्तर के पाप-पुण्य वहाँ छाये रहते हैं और इन्हीं के आधार पर जीव की अंतरंग सत्ता का प्रकटीकरण होता है। हारमोन इसी स्तर की स्थिति में प्रभावित होते हैं, इसीलिए यदि उन्हें चाहें तो संचित प्रारब्ध अथवा संग्रहीत संस्कार भी कह सकते हैं। यह संचय इस जन्म का भी हो सकता है और पिछले जन्मों का भी। परिवर्तन एवं उपचार इस स्तर की स्थिति का भी हो सकता है, पर वे प्रयत्न होने उसी प्रकार के चाहिए, जो आंतरिक

सत्ता की गहराई तक प्रवेश कर सकें और अपना प्रभाव उस पृष्ठभूमि तक उतार सकें।

क्या हारमोन क्षेत्र पर नियंत्रण हो सकता है ? क्या उनकी विकृत गतिविधियों को संतुलित किया जा सकता है ? क्या इच्छा या आवश्यकता के अनुरूप इन्हें घटाया या बढ़ाया जा सकता है ? इसका उत्तर 'हाँ' में दिया जा सकता है। पर यह समझ लेना चाहिए कि इसके लिए प्रयास वे करने पड़ेंगे, जो अंतश्चेतना को गहराई तक प्रभावित करते हैं। शारीरिक आहार-विहार या मानसिक तर्क-वितर्क या उपचारों के द्वारा उस गहराई तक नहीं पहुँचा जा सकता जहाँ इन हारमोनों का मूलभूत उद्‌गम है। केवल आध्यात्मिक साधनाओं का मार्ग ही ऐसा है, जो शरीर और मन को प्रभावित करके हारमोनों को ही नहीं और भी कितने ही महत्त्वपूर्ण आधारों में हेर-फेर करके मनुष्य को सामान्य से असामान्य बना सकता है।

आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा इसलिए संभव है कि इस विज्ञान दृष्टि में संपूर्ण जगत् संपूर्ण ब्रह्मांड एक अविभक्त और एक रस सत्ता है। सागर की एक बूँद में भी वही विशेषतायें होती हैं, जो सागर की अगाध जलराशि में विद्यमान रहती हैं। वस्तुतः अध्यात्म की दृष्टि से यह तुलना भी पूरी तरह संगत नहीं बैठती। अध्यात्म के विषय को भौतिक उपमाओं द्वारा नहीं समझा जा सकता। मनीषियों का तो यह कहना है कि जो अणु में है वही विभु में है। इतना ही नहीं, अणु ही विभु है, क्योंकि अणु कहने के लिए भी तो एक विभाजन परिधि खींचनी पड़ेगी। जब सारा जगत् ही उस एक तत्त्व से संव्याप्त है, तो विभाजन रेखा खींचने के लिए भी कौन सा रिक्त स्थान बचता है ? इस तथ्य को समझने और हृदयंगम करने के बाद मनुष्य के लिए कोई शोक-संताप नहीं रह जाते।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)